ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 27 सितंबर 2015 आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र सप्ताह रविवार 27 सितंबर 2015 से 03 अक्टूबर 2015

मा.शु. –14● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 39, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा और डी.ए.वी. ने मिलकर हिमाचल प्रदेश के महामहिम राज्यपाल का अभिनन्दन किया

5 सितम्बर, 2015 को शिक्षक–दिवस के अवसर पर आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा और डी.ए.वी. कॉलेज मैनेजिंग कमेटी ने संयुक्त रूप से शिमला के पीटर हाफ सभागार में हिमाचल प्रदेश के महामहिम राज्यपाल आचार्य देवव्रतजी का अभिनन्दन समारोह आयोजित किया। इस अवसर पर सभा एवं डी.ए.वी. के पदाधिकारियों, निदेशकों एवं पंजाब, हरियाणा, चण्डीगढ़ में स्थित डी.ए.वी. संस्थाओं के प्राचार्यों, क्षेत्रीय निदेशकों और अध्यापकों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की।

महामहिम राज्यपाल के पीटर हाफ पहुंचने पर हिमाचल प्रदेश के लोक–वाद्यों की मधुर स्वरलहरियों एवं वेद–मंत्रोच्चारण सहित पारंपरिक ढंग से उनका स्वागत किया गया, और उन्होंने इस अवसर पर विशेष रूप से तैयार की गई एक प्रदर्शनी का अवलोकन किया।

कार्यक्रम का आरम्भ दीप प्रज्ज्वलन से हुआ, जिसके बाद डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, लक्कड़ बाजार, शिमला की छात्राओं ने संगठन–सूक्त तथा शिव संकल्प के मंत्रों का भावगीतों सहित अत्यंत प्रभावकारी उच्चारण किया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी.ए.वी. के यशस्वी प्रधान श्री पूनम सूरीजी ने अपने उद्‌बोधन में आचार्य देवव्रतजी को हिमाचल प्रदेश का महामहिम राज्यपाल बनाए जाने पर हार्दिक बधाई देते हुए इसे सभी आर्यों और संपूर्ण डी.ए.वी. परिवार के लिए गर्व की बात बताया। प्रधानजी ने भारत सरकार का इस शुभ–कार्य के लिए धन्यवाद करते हुए कहा कि आचार्य देवव्रतजी, जो स्वयं एक अध्यापक हैं, उनको इतना बड़ा सम्मान देकर आर्य समाज पर बहुत बड़ा उपकार किया गया है। मान्य प्रधानजी ने यह विश्वास जताया कि महामहिम के नेतृत्व में इस पर्वतीय प्रदेश में अज्ञानता, और जो अन्य सामाजिक तथा नैतिक बुराईयां फैली हुई हैं उनको दूर करने का मार्ग प्रशस्त होगा। श्री सूरी ने आचार्यजी को विश्वास दिलाया कि हिमाचल प्रदेश में स्थित डी.ए.वी. के 52 स्कूल और 3 कॉलेज, इनके सारे अध्यापक, प्राध्यापक और आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, हिमाचल प्रदेश, हर समय और हर प्रकार से महामहिम राज्यपाल के कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने के लिए तत्पर रहेंगे।

मान्य प्रधानजी ने एक हज़ार से ऊपर उपस्थित आर्यजनों के समक्ष आचार्य देवव्रतजी के जीवन के कुछ स्वर्णिम और स्पृहणीय पक्ष रखे और बताया कि कैसे अपनी निष्ठा, कर्त्तव्य–परायणता और समर्पण के बल पर उन्होंने आर्य समाज, शिक्षा और स्वास्थ्य को लेकर एक ऐसा कार्य किया है जो सब के लिए एक मार्गदर्शक हो सकता है।

महामहिम राज्यपाल को सम्मान–सूचक, पगड़ी, शॉल और अभिनन्दन–पत्र एवं स्मृति–चिन्ह देकर सम्मानित किया गया तो सारा सभागार तालियों के गड़गड़ाहट से गूँज उठा। शिक्षक दिवस के अवसर पर सभी शिक्षकों को हार्दिक बधाई देते हुए मान्य प्रधानजी ने योगेश्वर श्री कृष्णजी का स्मरण किया और कहा कि वे अद्वितीय अध्यापक थे। डी.ए.वी. का शिक्षक कैसा होना चाहिए, इस विषय में मान्य प्रधानजी ने महात्मा हंसराज का उदाहरण दिया और कहा कि,''सीखना मुश्किल है जुस्तजू चाहिए, सिखाना और भी मुश्किल है, खाक़ में मिटने की तमन्ना चाहिए।''

महामहिम राज्यपाल आचार्य देवव्रतजी ने श्री पूनम सूरीजी सहित उपस्थित पदाधिकारियों एवं अन्य आर्यजनों का बहुत ही विनम्रता से अभिनन्दन किया और योगेश्वर श्रीकृष्णजी के जन्मदिन पर हार्दिक शुभकामनाएं दीं। उन्होंने स्वयं को डी.ए.वी. परिवार का सदस्य बताया और कहा कि इस निकटता का एकमात्र कारण डी.ए.वी. के प्रधान श्री पूनम सूरीजी हैं। डी.ए.वी. की स्थापना से जुड़ी हुई विभूतियों को स्मरण करते हुए महामहिम ने कहा कि आज आवश्यकता है कि हम लोग इन पूर्वजों के जीवन से प्रेरणा ग्रहण करें जिन्होंने अत्यंत कठिनाइयों को सहते हुए इस विशाल आन्दोलन को अपने तप और त्याग से सिंचित किया। महामहिम ने कहा कि एक समय था जब डी.ए.वी. का शरीर तो था लेकिन आत्मा दिखाई नहीं देती थी। लोग अशांत थे, बेचैन थे, दुःखी थे, लेकिन ईश्वर की कृपा हुई और ऐसे प्रशस्त व्यक्तित्व,श्री पूनम सूरी, सामने आए जिन्होंने अपने व्यक्तिगत कार्यों को तिलांजलि देकर अपने आपको डी.ए.वी. को समर्पित कर दिया, और आज महात्मा हंसराज, पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी और महात्मा आनन्दस्वामीजी के काल के वे दिन फिर लौट आए हैं—ये डी.ए.वी. का सौभाग्य है।

यह उल्लेखनीय है कि आचार्य देवव्रत जी महामहिम राज्यपाल ने राजभवन में आते ही यज्ञशाला बनवाकर विधिवत् रूप से यज्ञ करना आरम्भ कर दिया है। महामहिम ने भारतीय संस्कृति की गुरु–शिष्य परम्परा का उल्लेख किया और शिक्षक को समाज, राष्ट्र और विश्व का निर्माता बताया।

आचार्य जी ने उपस्थित आर्यजनों का आह्वान किया और कहा कि सोच के साथ, विवेक के साथ, एक उद्देश्य के प्रति समर्पित हों। महामहिम ने इस आयोजन के माध्यम से अभिव्यक्त अपनेपन को लेकर डी.ए.वी. और आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का धन्यवाद किया और डी.ए.वी. के प्रति किसी भी प्रकार से हो सकने वाली सेवाओं का संकल्प दोहराया।

उदयपुर में ऋग्वेद पारायण यज्ञ सम्पन्न

आर्य समाज हिरण मगरी, उदयपुर की ओर से सात दिन का ऋग्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन किया गया। महायज्ञ के ब्रह्मा सुप्रसिद्ध वैदिक आचार्य डॉ. सोमदेव शास्त्री थे। आर्य कन्या गुरुकुल सासनी हाथरस (उ. प्र.) की अधिष्ठता डॉ. पवित्रा ब्रह्मचारिणियां विपाशा आर्या, सोनम, मनीषा, ललितेश आर्या द्वारा सरस्वर वेद पाठ एवं भजन प्रस्तुत किये। सायं सत्रों में श्री इन्द्र देव पीयूष ने भजन प्रस्तुत किये।

प्रतिदिन यज्ञोपरान्त डॉ. सोमदेव शास्त्री ने वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, गीता आदि ग्रंथों के उद्धरण देते हुए उपदेश दिये। आपने कहा कि हमारा जीवन यज्ञमय एवं परोपकारी होना चाहिए। वेद केवल एक समाज, धर्म अथवा मजहब के ग्रंथ नहीं है किन्तु संसार, को संचालित करने के लिए दिया ईश्वरीय ज्ञान है। जीवन में कभी स्वाध्याय एवं सत्संग से प्रमाद न करें। सत्संग एवं ईश्वर अराधना से जीवन का मार्जन होता है। डॉ. पवित्रा जी ने ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव को व्याख्यायित किया।

परायारण यज्ञ प्रातः सायंकालीन कुल पन्द्रह सत्रों में साठ प्रमुख यजमानों के अतिरिक्त पूर्णहूति के दिन उपस्थित सभी यज्ञप्रेमी बन्धुओं और मातृशक्ति ने आहुतिया प्रदान की। मंत्री श्रीमती ललिता मेहरा ने उपस्थित आर्यजनों का धन्यवाद दिया।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

आर्य जगत्

सप्ताह रविवार 27 सितंबर, 2015 से 03 अक्तूबर, 2015

हम तेरे सम्मुख मूढ़ हैं

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

मूरा अमूर न वयं चिकित्वो, महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से।
शये वव्रिश्चरति जिह्वयाऽदन्, रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन्।।

ऋग् १०.४.४

ऋषिः **त्रितः आप्त्यः**। देवता **अग्निः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● **(अङ्ग)** हे, **(अमूर)** अमूढ़, **(चिकित्वः)** ज्ञानी, **(अग्ने)** परमेश्वर!, **(मूराः)** मूढ़, **(वयं)** हम, **(महित्वं)** महत्ता को, **(न)** नहीं [जान पाते]।, **(त्वं)** तू, **(वित्से)** जानता है। [हमारा], **(वव्रिः)** रूपवान् आत्मा, **(शये)** सोया पड़ा है, **(जिह्वया)** जिह्वा [आदि इन्द्रियों] से, **(अदन्)** भोग करता हुआ, **(चरति)** विचरता है, **(विश्पतिः सन्)** राजा होता हुआ [भी], **(युवतिं)** प्रकृति–रूप युवति को, **(रेरिह्यते)** अतिशय पुनः–पुनः चाट रहा है।

● हे अग्ने! हे तेजोमय ज्ञानी प्रभु! हम मूढ़ हैं, तुम अमूढ़ हो। हम तो यह भी नहीं जानते कि 'महत्ता' किसका नाम है, महत्त्व प्राप्त करना किसे कहते हैं। हम तो समझते हैं कि सांसारिक दृष्टि से महिमाशाली होना, हाथी, घोड़े, रथ, सेवक आदि का स्वामी हो जाना ही महत्ता है। हमारा तो विचार है कि नचिकेता को यम ने जिस सांसारिक धन–दौलत, पुत्र–पौत्र, भूमि के राज्य आदि सम्पत्ति के प्रलोभन में फँसाना चाहा था, उस सम्पत्ति को पा लेना ही महत्ता है। पर हम मूढ़ अज्ञानियों के ऊपर रहनेवाले अमूढ़ ज्ञानी तुम जानते हो कि सच्ची 'महत्ता' क्या है।

हमारा रूपवान् आत्मा सोया पड़ा है, उसे यही चेतना नहीं है कि मैं किसलिए इस शरीर में आया हूँ, मेरा लक्ष्य क्या है मुझे किधर जाना है। वह जिह्वा आदि इन्द्रियों से निरन्तर भोगों को भोगने में आसक्त हुआ विचर रहा है और इस भोग भोगने में ही अपने जीवन की इतिश्री मान बैठा है। भगवान् ने उसे 'विश्पति' बनाया है, शरीर–नगरी का राजा बनााया हैं, जिसमें मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियाँ आदि अनेक प्रजाएँ निवास करती हैं। उसे इस शरीर–नगरी को ईश्वरीय साम्राज्य बनाना चाहिए था, अध्यात्म–साधना द्वारा आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत राष्ट्र बनाना चाहिए था। शरीर–राष्ट्र को भोगों से जर्जर न कर सबल, सप्राण और समनस्क करना चाहिए था। पर धिक्कार है इस आत्मा को! यह तो एक 'युवति' को चाट रहा है, अतिशय पुनः–पुनः चाट रहा है। प्रकृति ही यह युवति है जो नटी बनकर आत्मा को अपने साथ नचा रही है, भोग भुगा रही है। आत्मा प्रकृति को चाट रहा है, प्रकृति आत्मा को चाट रही है। इस प्रकार आत्मा लौकिक भोग–विलासों में आनन्द ले रहा है।

हे मेरे आत्मन्! इस मूढ़ता को त्यागो, अपने अन्दर ज्ञान की ज्योति जगाओ, 'सच्ची महत्ता क्या है' इसे जानो, सोते से उठ खड़े हो, इन्द्रियों के वशीवर्ती न हो, अपितु इन्द्रियों के स्वामी बनो। प्रकृति को न चाटकर परम प्रभु के अमृत–रस का आस्वादन करो। तुम्हारा उद्धार होगा, तुम महिमाशाली बन जाओगे। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

भक्त और भगवान

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में स्वामी जी ने जीवनराम की कहानी सुनते हुए कहा कि यह जीवनराम है आत्मा, ज्योतिस्वरूप है ईश्वर, मकान है शरीर।

स्वामी जी ने आत्मा के बारे में कहानी सुनाई। देव और असुर दोनों ने सोचा कि आत्मा को जानना चाहिए। दोनों प्रजापति से पूछने आए कि आत्मा क्या है? प्रजापति ने बताया कि शरीर आत्मा नहीं है। जो शरीर की पूजा करता है, वह विनाश की पूजा करता है।

आज भी असुर लोग केवल शरीर की बात सोचते हैं। उस आत्मा के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं जो अजर, अमर और अभय है; जो कभी नष्ट नहीं होता और जिसके कारण यह सब कुछ हो रहा है।

अब आगे...

कई व्यक्ति आपको ऐसे मिलेंगे जिनके नेत्र नहीं, कान नहीं, जिह्वा नहीं, फिर भी वे सारा काम करते हैं। यह प्रश्न एक बार महाराज जनक के मन में उत्पनन हुआ। प्रतिदिन उनके यहाँ सत्संग होता था। बड़े–बड़े ऋषि और योगी उसमें आते थे। ऐसे ही एक सत्संग में उन्होंने महर्षि याज्ञवल्क्य से पूछा, "महाराज! हम किस ज्योति से देखते हैं?"

याज्ञवल्क्य बोले, "सूर्य की ज्योति से।"

जनक ने पूछा, "जब सूर्य न हो, तब?"

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, "चन्द्रमा की ज्योति से।"

जनक ने पूछा, "जब चन्द्रमा भी न हो, बादल आ गए हों या अँधेरी रात्रि हो, तब?"

याज्ञवल्क्य बोले, "तब अग्नि की ज्योति से।"

जनक ने कहा, "कभी–कभी अग्नि भी नहीं होती। घना जंगल, रात्रि का समय, प्रत्येक दिशा में अन्धकार। मार्गभ्रष्ट पथिक पुकारकर पूछता है– कोई है तो उत्तर दो कि मैं किधर जाऊँ? दूर खड़ा एक व्यक्ति कहता है– इधर आ जाओ। उधर ही वह चल पड़ता है। तब वह किस ज्योति से देखता है?"

याज्ञवल्क्य बोले, "तब वह वाणी की ज्योति से देखता है।"

जनक बोले, "और जब वाणी भी न हो, आवाज भी सुनाई न दे, तब वह किस ज्योति से देखता है?"

याज्ञवल्क्य बोले, "राजन्! तब वह आत्मा की ज्योति से देखता है। उसी के कारण प्रत्येक वस्तु प्रकाशित है।"

जनक ने पूछा, "यह आत्मा क्या है?

याज्ञवल्क्य बोले–

योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पूरुषः।

"यह जो विशेष ज्ञान से भरपूर, जीवन से और जागृति से भरपूर है, जो हृदय में जीवन है, अन्तःकरण में ज्योति है और सारे शरीर में विद्यमान है, यही आत्मा है।"

कई लोग पूछते हैं कि आत्मा कहाँ रहता है? उनके प्रश्न का उत्तर महर्षि याज्ञवल्क्य के इस उपदेश में विद्यमान है। वैसे यदि आप जानना चाहते हों कि इस समय आपका आत्मा शरीर के किस भाग में प्रधान रूप से है तो सुनिये कि इस समय आपमें से प्रत्येक का आत्मा दाईं आँख में बैठकर संसार का तमाशा देख रहा है। जब तक आप जागते रहेंगे, तब तक वह रहेगा। जब आप सो जायेंगे तो यह आत्मा प्रधान रूप से गले में जाकर बैठ जायेगा; तब आप स्वप्न देखेंगे। आपकी ज्ञान और कर्मेन्द्रियाँ सो जायेंगी। मन, बुद्धि, अहंकार के साथ आत्मा जागता रहेगा; सूक्ष्म कर्मेन्द्रियों और सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियों से स्वप्नों का संसार निर्माण करता रहेगा। परन्तु जब आप गाढ़ी निद्रा में (ऐसी नींद में जहाँ स्वप्न भी नहीं) चले जाएँगे तो यह आत्मा गले से हटकर हृदय में चला जायेगा। जब मन, बुद्धि, अहंकार, सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ सब सो जाती हैं, केवल प्राण और आत्मा जागते रहते हैं, तब आदमी अपने रूप को देखता है, उसमें आनन्द–रूप से बैठे हुए परब्रह्म को। जागने पर व्यक्ति कहता है, "बहुत आनन्द आया।" परन्तु जब गाढ़ी निद्रा थी, आत्मा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था, तब वह आनन्द किसे आया? इसका सीधा–सा उत्तर यह है कि आत्मा ने आत्मा के आनन्द को पाया, उस आनन्द को प्राप्त किया जो परब्रह्म के रूप में उसमें छिपा

बैठा है। यह है भगवान् की कृपा। ऐसा प्रबन्ध उसने किया है कि पापी से पापी व्यक्ति भी दो घण्टे में कम–से–कम एक बार आत्मा के आनन्द को प्राप्त कर सके। हृदय में पुरीतति नाम की एक नाड़ी है। जैसे ही गाढ़ निद्रा आरम्भ होती है, वैसे ही आत्मा इस नाड़ी से होकर ब्रह्मलोक में पहुँच जाता है। परन्तु यह ब्रह्मलोक कहीं बाहर नहीं, इस शरीर में है। प्रत्येक वस्तु इसमें विद्यमान है, हर–हर करती हुई गंगा, भागती हुई जमुना, आकाश को छूता हुआ हिमालय, सोने की भाँति चमकता सुमेरु, गहरे सागर, विशाल मैदान, लाखों नदियाँ, करोड़ों सूर्य, अरबों पृथिवियाँ, सब–कुछ आपके भीतर हैं, ब्रह्मलोक भी वहीं है।

जनक महाराज ने पूछा, "महर्षि! यदि सब–कुछ हमारे भीतर है, तो हमें पता क्यों नहीं लगता?"

महर्षि बोले, "जिस प्रकार धातुओं की विद्या को जाननेवाला जानता है कि पृथिवी में कहाँ कौन–सी धातु है, निपुण इञ्जीनियर जानता है कि किस स्थान पर खोदने से कितनी दूर पर पानी है, उसी प्रकार आत्मा का ज्ञान रखनेवाला इन सब बातों को जानता है, साधारण लोग इसे नहीं जानते। साधारण लोग यह भी नहीं जानते कि पृथिवी के भीतर कहाँ पर कौन–सी धातु है, कहाँ पर पानी है।"

सो भाई मेरे! है सब–कुछ, जाननेवाला जानता है। मैं जो आ जाऊँ आपके पास एक वैद्य का रूप बनाकर, और आपकी नाड़ी पर हाथ रखकर बैठ जाऊँ तो मुझे क्या पता लगेगा? यह तो जाननेवाला जानेगा।

देखो, अब मैंने बता दिया। अब यह मत कहना है कि हम आत्मा के आनन्द को नहीं जानते। प्रतिदिन आप इस आनन्द को देखते हैं, प्रतिदिन आप ब्रह्मलोक में जाते हैं, प्रकृति के साथ आपका जो सम्बन्ध है, वह आपको प्रतिदिन इस जंजाल में वापस ले आता है। ज्यों–ज्यों यह जंजाल ढीला होगा और प्रकृति का नाता कम होगा, त्यों–त्यों हम ब्रह्म के निकट होते जायेंगे।

परन्तु प्रकृति के इस नाते को समाप्त करना सरल तो नहीं। आत्मा प्रभु का दर्शन पाने के लिए तरसता है, पुकारकर कहता है–

उत स्वया तन्वा सं वदे तत्कदा
न्वन्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं
सुमना अभि ख्यम्।।

(ऋ. 7 । 86 । 2)

"प्यारे सुन्दर प्रभो! वह दिन कब चढ़ेगा जब मैं तेरे दर्शन पाऊँगा? कब तू मेरी भेंट स्वीकार करेगा? प्यारे सुन्दर प्रभो! वह दिन कब चढ़ेगा, जब मैं तेरा अन्तरंग बनूँगा? और वह शुभ घड़ी कब आयेगी जब मैं अपने आत्मा के साथ तुझसे बातचीत करूँगा?"

यह ऋग्वेद के सातवें मण्डल में 86वें सूक्त का दूसरा मन्त्र है। परन्तु यह सूक्त तो भक्त की पुकार से भरा पड़ा है। दूसरे मन्त्र में इस प्रकार पुकारने के पश्चात् तीसरे मन्त्र में भक्त कहता है–

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि
चिकितुषो विपृच्छम्।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं
वरुणो हृणीते।।

(ऋ. 7 । 86 । 3)

"हे प्रभो! हे स्वामिन्! तू तो वरुण है। जैसे पत्नी पति को वर लेती है और फिर उसके लिए पति के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं रहता, वैसे ही मैंने तुझे वर लिया, तेरे अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिए। परन्तु इतना बताओ देवता, मैंने वह कौन–सा पाप किया है, जिसके कारण मैं यहाँ बँधा पड़ा हूँ? पूछने आया हूँ वरुणदेव! क्योंकि जिन विद्वानों से मैंने पूछा, उन्होंने यही कहा कि वह परमब्रह्म ही तुझ पर कृपा नहीं करता, वह तुझसे रूठ गया है। रूठो नहीं महाराज! मुझे बताओ कि मेरे किस पाप–अपराध ने तुम्हारी कृपा को रोक दिया है?"

परन्तु वरुण ने उत्तर तो नहीं दिया। भक्त की बेचैनी और भी बढ़ गई। व्याकुल होकर भक्त ने अगले मन्त्र में पुकारा–

किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत्स्तोतारं
जिघांससि सखायम्।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोऽव त्वानेना
नमसा तुर इयाम्।।

(ऋ. 7 । 86 । 4)

"बोलो, मेरे प्रियतम! मेरे मनमोहन! मैं तुम्हें वरता हूँ, मैं तुम्हारा मित्र हूँ, मैं तुम्हारा अपना हूँ। कृपा करके बोलो कि ऐसा कौन–सा अपराध मैंने कर दिया है कि तुम मेरे जैसे प्यार–भरे भक्त को भी दण्ड देना चाहते हो?

अरे ओ बहुत कठिनता से मिलनेवाले! रूठकर दूर बैठे हुए, दूर–दूर तक प्रत्येक स्थान पर ज्योति देनेवाले मेरे प्यारे! कृपा करके बोलो, और बताओ कि पाप से अलग होकर, भक्ति से भरपूर होकर, शीघ्र–से–शीघ्र मैं तुम्हारे पास किस प्रकार पहुँच पाऊँगा? बोलो, प्रभो! चुप न रहो। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, मैं तुम्हारा अपना हूँ।"

यह ऋग्वेद के इस सूक्त का चौथा मन्त्र है। पाँचवें मन्त्र में भक्त और भी दुःखी होकर कहता है–

अव दुग्धानि ऽपित्र्या सृजा नोऽव
या वयं चकृमा तनूभिः।
अव राजन् पशुतृपं न तायुं सृजा
वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम्।।

(ऋ. 7 । 86 । 5

"ओ मेरे राजा! मेरे ज्योति से पूर्ण स्वामिन्! जिन लोगों ने मुझे पाला वे शायद ठीक शिक्षा न दे पाये मुझे, उसके कारण कुछ अपराध हो गए। और मैं भी शायद तेरे उपदेशों को भूलकर कुछ त्रुटियाँ कर बैठा। परन्तु देख! हो गया अपराध, अब इन्हें हटा दे। पशुओं को चुरानेवाले चोरी करने से पूर्व उन्हें घास खिलाते हैं। मैं भी इन इन्द्रियों को घास खिला रहा था। बाँध लिया गया। हो गया अपराध मुझसे, परन्तु मैं तुझे प्यार तो करता हूँ। मेरा हृदय तो तुझमें रहता है, हे विश्वदेव! प्यारभरा स्वामी जिस प्रकार बछड़े की रस्सी खोल देता है, इसी प्रकार प्रकृति के इस बंधन को खोल दे, जो रस्सी की भाँति मुझे जकड़े बैठी है। मुझसे अपराध हो गया प्रियतम! मैं शक्ति माँगता हूँ। मेरे अपराधों को मुझसे दूर कर दे।"

कैसी पुकार है यह! कितना दर्द है इसमें! कितनी करुणा है! सच्चा प्यार जब उत्पन्न होता है, तब भक्त इसी प्रकार पुकारता है। तब वह देर नहीं देखता। प्रियतम की चुप्पी नहीं देखता। सिर झुका देता है यार की चौखट पर और साहस से कहता है–

यदि नाथ का नाम दयानिधि है,
तो दया भी करेंगे कभी न कभी।
जब तारणहार कहावत हैं,
भव पार करेंगे कभी न कभी।।

इस प्रकार वह कहता है– हो गया न अपराध, अब क्षमा कर दो! तब अपने प्यारे प्रभु से रोकर कहता है–

जे मैं भुल्ल विगाड़िया,
मैला करीं न चित्त।
साहिब गौरा लोड़िये,
नफर विगाड़े वित्त।।

हो गया अपराध मुझसे, गिर पड़ा, मैं पतित हो गया। परन्तु तू तो अपने को मत भूल! तू पतितपावन है, मैं यदि गिरता नहीं तो तू उठाता कैसे? तेरा यह एम्प्लॉयमेंट एक्सचेंज चलता है न! परन्तु मैं यदि बेकार न बनूँ तो तू नौकरी किसे दिलायेगा? भक्त सूरदास ने कितना सुन्दर गीत गाया–

प्रभु जी मेरे अवगुण चित न धरो
समदर्शी है नाम तिहारो चाहे
तो पार करो।
इक लोहा पूजा में राखत इक
घर बधिक परो।
पारस गुण अवगुण नहीं चितवत कंचन
करत खरो।
इक नदिया इक नार कहावत
मैलो ही नीर भरो।
जब मिलि दोनों एक वरण भये
सुरसरी नाम परो।
यह माया भ्रमजाल कहावत
सूरश्याम झिगरो।
अब की बार मोहे पार उतारो
नहि प्रण जात टरो।
प्रभु जी मेरे अवगुण चित न धरो।

यह है पुकार! देखो राजा, गलती हो गई हमसे। अब कृपा कर दो! तुम तो समदर्शी हो, पतितपावन हो। अपने नाम की लाज रखो। दर्शन दे दो, हृदय से लगा लो!

और देखो, जब इस प्रकार पुकारता है भक्त, तब वह हँसता है, और तब वह आवाज़ देकर कहता है–

रोशन हैं मेरे जलवे हर
एक शै में लेकिन,
है चश्म कोर (अन्धी) तेरी,
क्या है कुसूर मेरा।

हाँ, प्यार से पुकारने पर वह कृपा कर देता है और वही कृपा कर सकता है, दूसरा नहीं–

न कहीं जहाँ में अमाँ मिली,
जो अमाँ मिली तो कहाँ मिली,
मेरे जुर्म–हाये सियाह को,
तरे अफ्व बन्दानवाज़ में।

पंजाब के प्रसिद्ध उर्दू कवि स्वर्गीय पं. हरिचन्द अख्तर ने एक बार कहा था–

जो ठोकर ही नहीं खाते,
वो सब कुछ हैं मगर वाइज़,
वो जिनको दस्ते रहमत खुद
सँभाले, और होते हैं।

हाँ, सच्चे हृदय से पुकारो। पश्चात्ताप करो। सच्चे प्यार को हृदय में जगा लो तो वह कृपा करता है अवश्य–

इस तरफ रुख (झुकाव) तेरी रहमत
(दया) का जो देखा दमे–हश्र,
मिल गये दौड़ के ज़ाहिद (महात्मा)
भी गुनहगारों में।।

हाँ, वह दया करता है अवश्य। दर्शन भी देता है–

न कोई परदा है उनके दर पर, न
रूए–रोशन नकाब में है।
तू आप अपनी खुदी से ऐ दिल,
हिजाब में था हिजाब में है।।

तब हर ओर वही दिखाई देता है। घास के हर तिनके में, बाग के हर फूल में, खेत के हर दाने में, नदी की हर लहर में, हवा के हर झोंके में, बाहर, भीतर, प्रत्येक स्थान पर, प्रति ओर, वह–ही–वह रह जाता है, अपना–आप कहीं नहीं रहता है–

लाली मेरे लाल की,
जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई,
मैं भी हो गई लाल।।

परन्तु अब समय हो गया, इसलिए शेष कल–

ओ३म् तत्सत्!

जीवन का उद्देश्य : पुरुषार्थ–चतुष्टय

● डॉ. महेश विद्यालंकार

शास्त्रों में जीवनोद्देश्य को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष चार भागों में बाँटा गया है। इन्हें ही पुरुषार्थ–चतुष्टय भी कहा जाता है। संसार के पुस्तकालय में वेद प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। वेदज्ञान जीवन और जगत् का सीधा, सच्चा व सरल मार्ग बताते हैं। वेदानुकूल जीवनपद्धति अपनाने से जीवन प्रेरक तथा जगत् मंगलमय बन जाता है। वेद–शास्त्र और ऋषि–मुनि सभी मानवजीवन की सार्थकता और पूर्णता धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति में ही बताते हैं। भारतीय संस्कृति में प्रतिपादित धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चार पुरुषार्थों के द्वारा इहलोक और परलोक को सुखमय बनाया जा सकता है। इनमें भौतिकता एवं आध्यात्मिकता का समन्वय है। इनमें इहलोक और परलोक दोनों की प्राप्ति तथा चिन्तन आ जाता है। हमारी संस्कृति में इनके सन्तुलन तथा समन्वय पर बल दिया गया है। वैदिक चिन्तन में इन चारों की सिद्धि करने वाला जीवन ही आदर्श माना गया है। इन चारों में संसार की सब बातें आ जाती हैं।

अर्थ और काम से भौतिक विकास होता है। धर्म से मोक्ष, आध्यात्मिक तथा धार्मिक उन्नति होती है। इससे आत्मा उन्नति करता हुआ मुक्तावस्था तथा परमात्मा तक पहुँचता है। अर्थ का फल काम, भोग, वासना आदि हैं। धर्म के फल शान्ति, सन्तोष, प्रसन्नता, धार्मिक जीवन, प्रभु–सान्निध्य और मोक्ष–प्राप्ति हैं। जिस मनुष्य में केवल धन व काम की प्रधानता रहती है, वह केवल संसारी बनकर रह जाता है। जो व्यक्ति सेवा, सत्संग, आत्मचिन्तन तथा ईशभक्ति में समय नहीं देता है, उसका धर्म एवं मोक्ष का पक्ष कमजोर पड़ जाता है। इसी कारण आत्मज्ञान से शून्य होकर वह व्यक्ति भौतिकतावादी तथा भोगवादी बन जाता है। पाश्चात्य सभ्यता में अर्थ व काम की प्रधानता है। भारतीय चिन्तन में इन बातों का महत्त्व है। हमारी जीवन शैली में भोग और योग का समन्वय है। हमें जीवन की यात्रा धर्म से आरम्भ करनी है और मोक्ष तक पहुँचना है। इसी क्रम में जीवन की सफलता व पूर्णता है। यूरोपीय जीवनपद्धति में जीवन का अन्तिम लक्ष्य कुछ नहीं है। वे इसी जीवन को सब कुछ मानते हैं। जीवात्मा का अन्तिम लक्ष्य प्रभुप्राप्ति और मुक्तावस्था का प्राप्त करना भारतीय जीवनदर्शन की विशेषता है। ऐसा महान्, सच्चा व पूर्ण जीवनोद्देश्य संसार की किसी भी चिन्तनधारा में न मिलेगा। जीवात्मा का साध्य मोक्ष है। धर्म, अर्थ, काम ये तीनों साधन हैं। इनमें पहला धर्म व अन्तिम मोक्ष है, बीच में अर्थ और काम हैं। आज पहला धर्म व अन्तिम मोक्ष कथा, सत्संग, मन्दिर, तीर्थ, पुस्तकों आदि में रह गए हैं। व्यावहारिक जीवन में धर्म तथा मोक्ष का चिन्तन, मनन व आचरण नहीं हो रहा है। सर्वत्र अर्थ व काम का ताण्डव नृत्य होने के कारण हाहाकार मचा हुआ है। वर्तमान में धन की दौड़, कामभोग, सोच–प्रवृत्ति आदि मनुष्य को पशुता, असभ्यता एवं पतन की ओर ले जा रहे हैं, यह हम रोज सुन व देख रहे हैं।

हमारा जीवन तथा आचरण धर्ममय हो, हमारा धन धर्मपूर्वक, सच्चाई एवं ईमानदारी से कमाया हुआ हो और हम धर्मपूर्वक जीते हुए सांसारिक कामनाओं तथा इच्छाओं की पूर्ति करें, तभी हमें मोक्ष प्राप्त होगा। यह जगत् धर्मक्षेत्र व कुरुक्षेत्र है। यहाँ अन्दर–बाहर सभी जगह संघर्ष हो रहा है। इससे भागना नहीं, परन्तु इसी में रहकर मुकाबला करना है, आँखें खोलकर चलना है और जीना है। **न परमेश्वर को भूलना है और न जगत् को भूलना है। जो है, इसी में अच्छा खोजना और अच्छा बनाना है।** जीवन को हर स्थिति एवं परिस्थिति में से निकाल कर जीवन के लक्ष्य की ओर अग्रसर करना है और धर्मपूर्वक जीवन–यात्रा पूरी करनी है।

संसार को नियम, ज्ञान तथा त्यागपूर्वक भोगते हुए जीवन को पूर्णता की ओर ले चलना है। तीन इच्छाएँ प्रबल मानी गयी हैं– 1. लोकैषणा, 2. पुत्रेषणा, 3. वित्तैषणा। इन तीनों की पूर्ति गृहस्थ में ही संभव होती है। बिना भोगे आम आदमी की वासनाओं और इच्छाओं का शमन संभव नहीं है, अतः वासनाओं के निग्रह का उत्तम साधन गृहस्थ माना गया है। विवाह से जीवन में पूर्णता आती है, व्यक्ति इधर–उधर की भटकन से बच जाता है और जीवन सन्तुलित, व्यवस्थित एवं सन्तुष्ट होकर आगे बढ़ने लगता है। हमारे अधिकांश ऋषि–मुनि और सन्त गृहस्थी थे। इससे गृहस्थ की उपयोगिता व सार्थकता सिद्ध होती है। गृहस्थ को स्वर्ग भी कहा गया है। गृहस्थाश्रम द्वारा ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति है। गृहस्थ में ही महाबली काम का शमन होता है। सांसारिक सुखभोग, इच्छाओं की पूर्ति, सन्तान–सुख और मान–प्रतिष्ठा आदि की प्राप्ति गृहस्थ में ही सम्भव है। भारतीय संस्कृति भोग से योग, प्रवृत्ति से निवृत्ति, भौतिकता से आध्यात्मिकता, शरीर से आत्मा तथा प्रकृति से परमात्मा की ओर चलने का उपदेश देती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का आपस में बड़ा गहरा सम्बन्ध है। इन चारों की प्राप्ति से ही जीवन में सुन्दरता, सफलता, तृप्ति व श्रेष्ठता आती है। इन चारों से ही जीवन एवं जगत् सन्तुलित, व्यवस्थित और उद्देश्यपूर्ण बना रहता है।

पहला पुरुषार्थ–धर्म

धर्म शब्द का सीधा व सरल अर्थ है– जो धारण किया जाए। महाभारत में व्यासमुनि कहते हैं– **'धारणाद् धर्म इत्याहुः'** धारण करने के कारण ही इसे धर्म कहते हैं। जिसके धारण करने से लोक और परलोक दोनों सुधरें, वही धर्म है। प्रश्न उठता है– क्या धारण किया जाए? जो श्रेष्ठ, सुखकारी, मंगलकारी, गुणकर्म और अच्छी बातें है, उन्हें आचरण में लाया जाए और उनको जीवन से जोड़ा जाए। कर्तव्य को भी धर्म कहते हैं। धर्म जीने की कला है। धर्म का सम्बन्ध कर्म व आत्मा से है। जो धर्म के तत्त्वों को व्यवहार में चरितार्थ कर लेता है, वही धार्मिक है, वही इहलोक और परलोक दोनों को सुखी बना सकता है। धर्म की परिभाषा करते हुए यह भी कहा गया है–

वस्तुस्वभावो धर्मः

वस्तु का जो अपना रूप व स्वभाव होता है, वही धर्म कहलाता है, जैसे–अग्नि का स्वभाव उष्णता है। यदि आग में से उष्णता निकाल दी जाए तो अग्नि का कोई महत्त्व नहीं रह जाता है। जल का धर्म शीतलता है, यदि पानी में से शीतलता अलग कर दें तो जल की उपयोगिता नहीं रह जाती है। जगत् में प्रत्येक पदार्थ का अपना धर्म होता है। ऐसे ही मनुष्य का धर्म है– मनुष्यता। जिन इन्सानों में इन्सानियत नहीं है, वे **'धर्मेण हीना पशुभिः समानाः'**– धर्म से रहित पशु के समान हैं। धर्म ही मनुष्य और पशु में अन्तर करता है। धर्म आदमी को पशुता से मानवता की ओर प्ररित करता है। **जब अच्छे विचार व भाव कर्म में आते हैं, तभी वे धर्म बनते हैं।** धर्म का आचरण के साथ सम्बन्ध है। धर्म का पालन मानवमात्र को सुखी एवं प्रसन्न करता है। धर्म मिलकर जीने की कला सिखाता है। कर्तव्यपालन से ही व्यक्ति, परिवार, समाज तथा राष्ट्र महान् बनते हैं। धर्म से प्राणिमात्र के प्रति सहृदयता, करुणा और मानवता का भाव जागृत बना रहता है। धर्म का बाहर के कर्मकाण्ड, प्रदर्शनों, चिह्नों, आडम्बरों और पाखण्डों आदि से सम्बन्ध नहीं है। सच्चे धर्म का प्राणिमात्र के साथ सम्बन्ध है।

धर्म और सम्प्रदाय में अन्तर है। धर्म परमात्मा द्वारा प्रवर्तित होता है, जबकि सम्प्रदाय मनुष्यों द्वारा संचालित होते हैं। धर्म जोड़ता है, जबकि सम्प्रदाय तोड़ते हैं। धर्म भाईचारा, प्रेम, सहयोग, जियो और जीने दो का भाव जागृत करता है। सम्प्रदाय आदमी–आदमी के बीच दीवार खड़ी करते हैं। समूची मानवजाति को सम्प्रदाय बाँट और लड़ा रहे हैं।

आज धर्म पर मत, मजहब और सम्प्रदाय हावी हो रहे हैं। उसी का परिणाम है कि धर्म क्षीण हो रहा है और सम्प्रदाय फल–फूल रहे हैं। धर्म परस्पर जोड़ता है, सम्प्रदाय विवाद व झगड़े खड़े करते हैं। आज धर्म शब्द का अर्थ गलत किया जा रहा है। सम्प्रदाय कभी भी धर्म नहीं हो सकता है। धर्म का कोई विकल्प नहीं है।

सम्प्रदाय अनेक होते हैं और मानवमात्र का सामान्य धर्म एक होता है। सम्प्रदायों में व्यक्तिपूजा, गुरुडम, पाखण्ड, प्रदर्शन और ग्रन्थपूजा होती है। वहाँ, गुरु, पुजापे, चढ़ावे आदि को महत्त्व दिया जाता है। धर्म में श्रेष्ठ आचारविचार, कर्तव्य तथा तथा जीवनमूल्यों पर बल होता है। धर्म का बाहर के तिलक, माला दाढ़ी आदि से कोई सम्बन्ध नहीं है। दुनिया सम्प्रदायों को ही धर्म समझने लगी है। आज झगड़े सम्प्रदायों के हैं, धर्म के नहीं। धर्म जो जीवनशक्ति है। पहले धर्म जीवनशैली के रूप में दीखता था, परन्तु आज प्रदर्शन, आडम्बर तथा कर्मकाण्ड के रूप में उसे माना जा रहा है। धर्म अन्दर की चीज है।

धर्म वह तत्त्व है जो मनुष्य के इहलोक और परलोक दोनों को सुधारता तथा सुखी बनाता है। जिसके पास धन होता है, उसे धनवान और जिसके पास विद्या है, उसे विद्वान् कहते हैं। ऐसे ही जो धर्म का आचरण करता और निभाता है, वही धार्मिक है। धर्म आदमी को पाप, अधर्म, बुराइयों एवं गलत रास्ते से हटाता व रोकता है। धर्म से विहीन आदमी पशु और राक्षस बन जाता है। मनु महाराज ने मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण अर्थात् चिह्न बताए हैं। जिस व्यक्ति में दस लक्षण दिखाई दें, वही वस्तुतः धार्मिक है। वे दस लक्षण हैं– धृति (धैर्य), क्षमा (सहनशीलता), दम (मन का नियंत्रण), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (सभी प्रकार की पवित्रता), इन्द्रियनिग्रह (इन्द्रियों को संयम में रखना), धी (सोच–समझकर कार्य करना), विद्या (ज्ञानी होना), सत्य (यथार्थ कथन करना), अक्रोध (गुस्सा न करना)।

धर्माचरण से मनुष्य फलता–फूलता और सुखी रहता है। जो धर्म को छोड़ देता है, धर्म उसे छोड़ देता है। धर्म से विहीन व्यक्ति का विनाश हो जाता है। कौरवों ने धर्ममर्यादाओं को छोड़, वे समूल नष्ट हो गए। रावण ने धर्ममर्यादा को तोड़ा, तो विनाश को प्राप्त हुआ। महाभारत का युद्ध धर्म–अधर्म, न्याय–अन्याय और सत्य–असत्य का था।

शेष पृष्ठ 05 पर ☞

धर्म मनुष्य की रक्षा करता है। अन्तिम विजय धर्म की ही मानी गई है।

भगवान् श्रीराम के जीवन में धर्म पूर्णरूप से अवतरित हुआ था। उन्होंने जीवन के प्रत्येक पक्ष में धर्ममर्यादा का पालन किया था। श्रीराम ने राजपाट, सुखसाधन, घरबार आदि सब कुछ छोड़ दिया, मगर कर्तव्य, मर्यादा तथा जीवनादर्श नहीं छोड़े, इसीलिए वे संसार में 'मर्यादा पुरुषोत्तम' कहलाये। रामायण धर्मपालन की शिक्षा, प्रेरणा व आदर्श देती है। जहाँ धर्म भावना का रूप धारण कर लेता है, वहाँ परस्पर प्रीति, त्याग, सेवा, सहयोग आदि प्रतिफलित होते हैं। जब कर्तव्यभाव छूटता है, तब स्वार्थ, अहंकार, लोभ और अकेले भोगने की चाह आदि आसुरीभाव प्रबल हो उठते हैं। इसका उदाहरण महाभारत है।

दुर्योधन पाण्डवों को पाँच गाँव भी देने के लिये तैयार नहीं हुआ। वह सम्पूर्ण राज्य को अकेला भोगना चाहता था। इसी कारण महाभारत हुआ। **रामायण में वे आदर्श, कर्तव्य और मर्यादाएँ हैं, जो होना चाहियें, जबकि महाभारत में वे बातें हैं, जो नहीं होनी चाहियें। जब भाई–भाई को राजसिंहासन का मुकुट पहिनाता है, तो रामायण बन जाती है, जब एक भाई दूसरे भाई के अधिकार को छीनता है, अकेला सब कुछ भोगना चाहता है और अहंकार के कारण किसी की बात नहीं मानता है तथा वृत्ति स्वार्थपूर्ण हो जाती है, तब महाभारत हो जाता है।** यही दोनों में अन्तर है। रामायण पाठ, कथा व रामलीला इसीलिये कराये तथा दुहराये जाते हैं जिससे हम अपनी धर्ममर्यादा, उद्देश्य, कर्तव्य तथा आदर्श जीवनमूल्यों को न भूलें। हमारे अन्दर धर्म, कर्त्तव्य, न्याय, सत्य तथा प्रभुभय बना रहे। अधिकार सभी को याद हैं, पर कर्त्तव्यों से मुँह मोड़ लिया। इसी कारण तरह–तरह की मुसीबतें, समस्याएँ, उलझनें, दुःख, अशान्ति आदि तेजी से बढ़ और फैल रहे हैं। व्यक्ति टूट रहा है, परिवार बिखर रहे हैं और समाज जीवनमूल्य–विहीन हो रहा है। महाभारत में धर्म का बड़ा सुन्दर, व्यावहारिक स्वरूप भीष्म पितामह सभी को समझाते हैं–

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

धर्म के सार को सुनो। सुनकर उसको धारण करो। जो व्यवहार तुम दूसरों से अपने प्रति नहीं चाहते हो, वैसा व्यवहार तुम भी दूसरों के प्रति मत करो। आत्मवत् सबको समझो। यही सच्चा धर्म है। धर्माचरण से ही मनुष्य धर्मात्मा बनता है। धर्मपालन करने से मानव जीवन में यश, कीर्ति तथा अमरता प्राप्त करता है। मनुष्यजीवन की सुन्दरता व सफलता धर्मपूर्वक आचरण करने में ही है। मानवजाति का सबसे बड़ा धर्म मानवता है। इस बिन्दु पर सभी विचारधारा वाले एकमत हैं। आज मानवता की कमी के कारण ही युद्ध, कलह, विवाद, अशान्ति और समस्याएँ बढ़ रही हैं। जो मानवता के तत्त्व स्नेह, करुणा, दया, सेवा, सहयोग, सहानुभूति आदि हैं, वे इस भोगवादी तथा भौतिकवादी वातावरण में बड़ी तेजी से टूट और छूट रहे हैं। इसी कारण आज यह सुन्दर संसार नरक बनता जा रहा है। धर्म के विषय में कणाद मुनि ने वैशेषिक दर्शन में चिन्तन दिया है–

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

सच्चा धर्म वही है, जो हमारे इस लोक के जीवन को सुखी, शान्त व मंगलमय बना दे, हमें मानवता से जोड़े और मोक्षमार्ग प्राप्त कराने में सहायक हो। सच्चा धर्म अगले जीवन के लिये सोच, विचार एवं दृष्टि देता है। धर्म अगले जन्म को सुधारता है। धर्माचरण ही भावी जीवन का आधार है। धर्म का मुख्य लक्ष्य है– सांसारिक जीवन को इस प्रकार जिएँ, जिससे हम सब प्रकार से सुखी रह सकें तथा परलोक भी सुधार सकें। परमानन्द रूप मोक्ष की प्राप्ति धर्माचरण से ही सम्भव है। धर्म मनुष्य को पशु होने से बचाता है। धर्म आदर्श जीवनशैली है, श्रेष्ठ जीवन जीने की कला तथा आचार–संहिता है। आज धर्म का नैतिक पक्ष तेजी से छूट रहा है। धर्म के बाह्य आडम्बर बढ़ रहे हैं। धार्मिक कहलाने वालों में नैतिकता का लोप हो रहा है। धर्म आचरण से दूर हो रहा है, कथनी तथा करनी में फासला बढ़ रहा है। बाहर और अन्दर के जीवन में बहुत अन्तर आ रहा है। यदि हम धार्मिक हैं, तो हमें गुण, कर्म, स्वभाव और जीवन में भी धार्मिकता दिखाई देनी चाहिए।

जिन्होंने धर्म को सुख–दुःख और हानि–लाभ में भी पकड़े रखा, वो अमर हो गये। धर्म ही तो है, जो मनुष्य के साथ जाता है। बाकी सब यहीं छूट जाता है। संसार धर्मपालन के कारण ही महापुरुषों को याद करता है। सीता माता धर्मपालन के कारण जगज्जननी बन गईं। धर्माचरण के कारण ही भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण जन–जन के आराध्य व स्मरणीय हो गए। जो अच्छे विचारों तथा भावों को कर्म में ले आते हैं, वे महान् बन जाते हैं।

आज धर्म केवल पूजापाठ, कथा, प्रवचन, सत्संग, तीर्थ, मठ, मन्दिर, गुरुडम, महन्त, कर्मकाण्ड आदि तक सीमित हो रहा है। इनसे धर्म का वास्तविक स्वरूप छूट रहा है। करोड़ों की संख्या में लोग कुम्भस्नान, वैष्णोदेवी–यात्रा, पूजापाठ, कथा, प्रवचन और विविध तीर्थयात्राओं आदि में भाग लेते हैं। इनमें से कुछ प्रतिशत तो शुद्ध, पवित्र व धार्मिक होने चाहियें, मगर जीवन तथा व्यवहार में कहीं धार्मिकता नजर नहीं आती है। लोग मन्दिर व कथा में पश्चात्ताप करते और कहते हैं– 'हमें पाप, अधर्म व झूठ से बचाओ।' वहाँ से निकलते ही फिर गलत सोच और गलत बातों में लग जाते हैं। धर्म व भक्ति अन्दर की चीज है, उसे हमने बाहर प्रदर्शन एवं आडम्बरों से जोड़ लिया है। आज धर्म के नाम पर न जाने क्या–क्या हो रहा है धर्म को सम्प्रदाय का आवरण पहनाकर विकृत किया जा रहा है। आम जनता कर्मकाण्ड को ही धर्म समझने लग गई है। गंगास्नान, तीर्थयात्रा, गुरुद्वारे–मन्दिर में सुबह–शाम हाजिरी लगाना, देवी–देवताओं, गुरु–महन्तों, मूर्तियों आदि के आगे सिर झुकाना, दीप जलाना, आरती उतारना तथा माला जपने को ही धर्म माना जा रहा है। कर्मकाण्ड वाला धर्म बाजार में बिकने भी लगा है। जो कर्मकाण्ड स्वयं नहीं कर सकते हैं, वे किराये के लोगों से करा लेते हैं। ढोंग, पाखण्ड व अविद्या के कारण असली धर्म छूट रहा है।

भारतीय चिन्तन–परम्परा में धर्म को सबसे पहला स्थान दिया गया है। धर्माचरण जीवन की नींव है। धर्म के कारण ही हम मनुष्य कहलाते हैं। संसार से भागो नहीं, इसमें रहते हुए, अपने कर्तव्य, दायित्व तथा जिम्मेदारियों को निभाते हुए अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते चलो। जीवन में धार्मिकता और आध्यात्मिकता का आरम्भ तब समझना चाहिये, जब हमारे अन्दर अपने को बदलने, सुधारने और सँभालने की भावना व संकल्प जागृत हो जाएँ। परिस्थितियाँ नहीं बदलती हैं, हम बदलते हैं। युद्धकाल में अर्जुन के सामने वही हालात और वही लोग खड़े थे, परन्तु अर्जुन स्वयं बदले। दिशा बदल गई। वे मोहावस्था से ज्ञानावस्था में आ गए।

धर्मपूर्वक जीवन जीने के लिये सोच, विचार, व्यवहार व आचरण ठीक रखने की आवश्यकता होती है। जो व्यक्ति इस दिशा में संकल्प एवं व्रत लेकर चल पड़ते हैं, उनके जीवन में परिवर्तन आने लगता है। जब भी मन में पाप और अधर्म आए तो आत्मा से पूछो– 'सत्य–मार्ग क्या है? धर्म क्या कहता है?' जब मनुष्य आँख, कान, मुख आदि पर धर्म को पहरेदार बैठायेगा तो इन इन्द्रियों से पाप न होगा। धर्म तो पाप से छुड़ाता है। चाणक्य का यह कथन अक्षरशः सत्य है– सुखस्य मूलं धर्मः– सुख–शान्ति तथा जीवन का मूल धर्माचरण में ही है। धर्म जीवन को पवित्र व ऊँचा उठाता है।

–शालीमार बाग, नई दिल्ली

क्रमशः................

संस्कृत का अध्ययन और प्रचार क्यों?

● अशोक कुमार शास्त्री

भारत सरकार ने रक्षा बन्धन के दिन को संस्कृत दिवस के रूप में मनाने हेतु चिन्हित किया है। विगत कई वर्षों से संस्कृत जगत इस पर्व को उत्साह से मना रहा है। हम सोचते हैं कि आमजनों में यह प्रश्न उठता होगा कि संस्कृत अध्ययन और प्रचार क्यों? यदि हम संस्कृत शब्द को ही लें तो इसका अर्थ है भाषा और भावों की दृष्टि से अपने को और समाज को पवित्र और मजबूत बनाना। व्यक्तित्व निर्माण, बहु व्यक्तित्व समाज बनाते हैं। समाज–देश, देशों को मिलकर विश्व। संक्षिप्त में कहें तो "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"। यह वैशिष्ट्य संस्कृत में ही मिलता है। आत्म सुख और विश्व को श्रेष्ठतम और सुखी बनाने हेतु संस्कृत पढ़ें। और संस्कृत होकर जियें। महर्षि पतञ्जलि की दिव्य दृष्टि में संस्कृत–

"ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः
षडंगोवेदोऽध्येयोजेयश्च।"

ऋषिवर दयानन्द लिखते हैं– वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक हैं। वेदपठन परमधर्म है! वैसे भी संस्कृत किसी देश विशेष या समुदाय की भाषा नहीं है। यह सभी के लिए समानश्रम साध्य है। दैवीय सम्पदा पाने एवं सम्पूर्णता पाने के लिए संस्कृत अध्ययन आवश्यक है। संस्कृत उपासकों में ऐसी अद्भुत क्षमता हो जाती है। वे स्वार्थ से ऊपर उठ जाते हैं कि वे सर्वे भवन्तु सुखिनः को साकार करने का संकल्प कर सकें। द्यौ शान्तिः अन्तरिक्ष शान्तिः जैसी प्रार्थनायें और क्रियाशीलता संस्कृत के अतिरिक्त और कहाँ? मानव कल्याण के लिए ईश्वरीय ज्ञान–ऋग, यजुः, साम, अथर्व, वेद चतुष्टय। व्याकरण, पुराण, इतिहास आदि षड्–दर्शन, उपनिषद् आदि ज्ञान का अथाह भण्डार हैं संस्कृत। आरोग्यता के लिए–चरक, सुश्रुत, भावप्रकाश निघन्टु जैसे ग्रन्थ निरापद सरलतम और सुलभ औषधि भंडार है। नीतिगत मामलों एवं न्याय पर–मनुस्मृति, याज्ञवाल्क्य स्मृति शुक्र नीति, जैसे अनेक ग्रन्थ मार्ग दर्शन करते हैं।

अर्थ जगत के लिए– कौटिल्य अर्थशास्त्र। समय आदि की गणना हेतु सूर्य सिद्धान्त, ज्योतिष के अनेक ग्रन्थ मौजूद हैं। नाटक, कविताएं आदि मन को नई दिशा प्रदान करते हैं। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, गीता आदि तो देश की सीमा पार कर विश्व में अपना स्थान बना चुके हैं। **"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"** के संस्कृत

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका– जो संन्यासी होते हैं, उनका मुख्य लक्ष्य ईश्वर को प्राप्त करना अथवा समाधि प्राप्त करना होता है। एक योगाभ्यासी बनने के लिये हमें लोभ, मोह, लालच नहीं करना चाहिये। सवाल उठता है कि क्या ईश्वर को प्राप्त करना लोभ, मोह, लालच नहीं है?

समाधान– ईश्वर को प्राप्त करना या मोक्ष प्राप्त करना, कोई लोभ नहीं है। लोभ की परिभाषा अलग है। जब परिभाषा पकड़ लेंगे, तो प्रश्न स्वतः सुलझ जायेगा। दो साबुन खरीदो और तीसरा मुफ्त में, यह लोभ है। आप बिना कर्म किये वस्तु प्राप्त करना चाहते हैं। कर्म तो किया आपने दो साबुन का और प्राप्त करना चाहते हैं तीन। तो बिना पुरुषार्थ किए, बिना कर्म किये, बिना पेमेंट किये, बिना पैसा दिये, आप जो मुफ्त में लेना चाहते हैं, उसका नाम है– लोभ।

जो संन्यासी बनता है, ईश्वर प्राप्त करना चाहता है, मोक्ष प्राप्त करना चाहता है, तो क्या वो मुफ्त में प्राप्त करना चाहता है या पुरुषार्थ करके प्राप्त करना चाहता है? पुरुषार्थ करके। तो लोभी नहीं हुआ। बिना पुरुषार्थ किए वह मोक्ष प्राप्त करना चाहे, तब तो वो लोभ है। लेकिन वो तो पुरुषार्थ करता है, पूरी मेहनत करता है।

और यह नियम है, कि जो पुरुषार्थ करेगा, उसको फल अवश्य मिलेगा। जैसा कर्म, वैसा फल। ईश्वर न्यायकारी है, फल तो देगा। तो यदि पुरुषार्थ करके कोई व्यक्ति धन प्राप्त करना चाहता है, तो यह न्याय की बात है, उचित बात है, धर्म की बात है। तो करो पुरुषार्थ, क्योंकि इसमें तो कोई आपत्ति नहीं है। वैसे ही कोई पुरुषार्थ करके ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है, तो यह न्याय की बात है, वो लोभ नहीं है। इसलिये ईश्वर प्राप्ति करना या मोक्ष प्राप्ति करना कोई लोभ नहीं है, कोई अधर्म नहीं है, कोई अन्याय नहीं है। यह बिल्कुल उचित है। ऐसा आप भी कर सकते हैं। इसलिए जोर लगाओ, संन्यासी बनो।

संन्यासी बनने से तो लोगों को डर लगता है, कि हमको संन्यासी बनवा देंगे, घर छुड़वा देंगे। मोक्ष में जाने के लिये संन्यास लेना अनिवार्य (कम्पलसरी) है। आज लो, बीस जन्म बाद लो, पचास जन्म के बाद लो, लेना तो पड़ेगा और कोई रास्ता नहीं है।

मोक्ष का रास्ता क्या है? पहले मनुष्य का जन्म धारण करो। और फिर मनुष्यों में ऊँचे–ऊँचे स्तर के मनुष्य बनते जाओ, ऊँची–ऊँची योग्यता प्राप्त करते जाओ। पहले शूद्र के यहाँ जन्म हो गया। फिर पुरुषार्थ करके हमने अच्छे कर्म किये, मेहनत की, तो वैश्य के गुणकर्म को धारण कर लिया, फिर वैश्य बन गये। जन्म की बात नहीं कर रहा हूँ, वर्ण–व्यवस्था गुण कर्मों से है, जन्म से नहीं। वैश्य वाली योग्यता प्राप्त कर ली, उसके बाद फिर और ऊँचे उठे, क्षत्रिय बन गये। फिर और ऊँचे उठे, ब्राह्मण बन गये। फिर ब्राह्मणों में भी और ऊँचे ब्राह्मण बन गये। फिर उनमें भी और ऊँचे उठे, संन्यासी बन गये। और संन्यास के बाद फिर मोक्ष होता है। यह है क्रम। मोक्ष में जाने की पद्धति इस प्रकार से है। तो जो–जो मोक्ष में जाना चाहते हैं, उनको यह सब क्रम अपनाना पड़ेगा। योग्यता बनानी पड़ेगी, ब्राह्मण बनना पड़ेगा, संन्यासी बनना पड़ेगा, घर छोड़ना पड़ेगा, संसार छोड़ना पड़ेगा, तब मोक्ष होगा। **मेरा प्रवचन सुनकर के, आप जोश में आकर, कल ही घर मत छोड़ देना। करना यही पड़ेगा, लेकिन कब करें?** उसके लिए तैयारी करनी पड़ेगी, योग्यता बनानी पड़ेगी। आपको घर छोड़ने की तैयारी करने में पाँच–दस वर्ष निकल जायेंगे। आज से आप सोचना शुरू करें, कि हमें घर छोड़ना है, हमें वानप्रस्थ लेना है, हमें संन्यास लेना है, योग्यता बनानी है। तो उसमें भी पाँच–दस वर्ष निकल जायेंगे। इसलिये जोश में आकर कोई काम नहीं करना चाहिये। होश में रहकर बुद्धिमत्ता से अपने सामर्थ्य को ध्यान में रखकर के करना चाहिये। तैयारी जरूर कर सकते हैं। तैयारी तो आप आज से भी शुरू कर सकते हैं, कि हम समय आने पर योग्यता बनाकर वानप्रस्थ लेंगे, संन्यास लेंगे।

167. शंका– मोक्ष की इच्छा एक कामना है, मोक्ष की कामना से किया हुआ निष्काम कर्म सकाम हो सकता है?

समाधान– पूछना शायद ऐसा चाहते हैं कि मोक्ष की कामना भी तो एक कामना है? यदि मोक्ष की कामना से कर्म किया गया, तो फिर वो निष्काम कर्म कैसे हुआ? कामना तो उसमें भी है। महर्षि दयानंद जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में परिभाषा लिखी है कि– "परमेश्वर प्राप्ति या मोक्ष प्राप्ति को लक्ष्य बनाकर जो कर्म किये जाते हैं, उसका नाम ही निष्काम कर्म है।" बिना कामना के तो कर्म हो ही नहीं सकता, वह असंभव है। व्यक्ति जो भी क्रिया करता है, तो कामनापूर्ण ही होती है। यह बात 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखी है। हमें पता भी नहीं चलता कि हमने कितनी बार आंख बंद की और कितनी बार खोली। वो भी जब बिना इच्छा के नहीं होती तब यज्ञ करना, दान देना, सेवा करना, प्रचार करना आदि इतने बड़े–बड़े काम बिना इच्छा के कैसे हो सकते हैं? नहीं हो सकते। कामना तो जरूर है, पर कामनाओं में अंतर है। लौकिक सुख की कामना किया तो वह सकाम कर्म है। और मोक्ष सुख की कामना से कर्म किया तो निष्काम कर्म है। ऐसा जानना चाहिये।

विद्या (विद्यातपोभ्यां भूतात्मा)

● भद्रसेन

विद्या शब्द अधिकतम पढ़ाई–लिखाई के लिए प्रसिद्ध है, जैसे कि विद्यालय, विद्यार्थी में इसी दृष्टि से प्रयुक्त हुआ है। पर यहां विद्या शब्द अध्यात्मज्ञान का वाचक है, तभी तो मनुस्मृति कार ने (5,109 में) विद्या को आत्मशुद्धि का साधन माना है (विद्यातपोभ्या भूतात्मा मनु. 5,109– इस के रहस्य को समझने के लिए वियोगवेदना, जन्म–मरण की उलझन का जीवन ज्योति प्रकरण या अमृतदर्शन पढ़ें) और वहां कई स्थलों पर विद्या शब्द अध्यात्मज्ञान के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम्। तद्धयग्रयं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः।। 12, 85)

तथा उसका फल अमृत कहा है। वैसे भी यहां धर्म का प्रसंग है और पहले धी शब्द में ज्ञान का संकेत आ ही चुका है।

आत्मज्ञान के होने पर व्यक्ति सामान्य दुखों में घबराता नहीं और किसी कार्य में अनुचित ढंग नहीं अपनाता, अपितु सच्चाई के लिए अपने आपे का बलिदान करने के लिए भी उद्यत रहता है। आत्मज्ञान से व्यक्ति में आत्मविश्वास और आत्मसम्मान का भाव उभरता है। जिस से वह उत्साह के साथ शुभ कर्मों में जुटा रहता है। तभी तो अर्जुन के आत्मबल को उभारने के लिए श्री कृष्ण जी ने गीता के दूसरे अध्याय में आत्मा के स्वरूप की चर्चा की है और योग की प्रक्रिया को इस दृष्टि से उपयोगी बताया है। गीता में आत्मविश्वास पर विशेष बल देते हुए कहा है

उद्धरेदात्मनात्मानम्, नात्मानवसादयेत्।
आत्मैवह्यात्मनोबन्धुरात्मैवरिपुरात्मनः।।6,5।।

आत्मसम्मान और आत्म विश्वास से अपने आप को उत्साहित करें, कभी भी धिक्कारे नहीं, क्योंकि आत्मविश्वासयुक्त अपना आपा अपना बन्धु है अन्यथा वह शत्रु का कार्य करता है। इसीलिए मनु ने कहा है– नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसामृद्धिभिः 4,137 अपनी गरीबी आदि के कारण अपने आपे को धिक्कारें नहीं अर्थात् अपने आपे का कभी भी असम्मान न करें।

'निज से निज का उद्धार करें, नहिं पतित करें अपने को भी।
हम आप ही अपने बन्धु हैं, हम आप ही अपने शत्रु भी।।

– जगतावली सूद

मनुस्मृतिकार ने 5,109 में विद्या को आत्मा के संशोधन का साधन बताया है। ऐसी स्थिति में पढ़ाई–लिखाई की अपेक्षा अध्यात्मज्ञान ही सहायक है और इस प्रसंग में तप का भाव योगाभ्यास से ही है, क्योंकि वह ही इस प्रकरण में आत्मज्ञान का क्रियात्मक रूप हो सकता है।

अतः धर्म की चर्चा में पढ़ाई–लिखाई की अपेक्षा विद्या शब्द का अध्यात्मज्ञान अर्थात् अपने आप की पहचान कराने वाले ज्ञान के अर्थ में लेना अधिक उपयुक्त है। हां, आत्मज्ञान का विस्तृत विवेचन अमृतदर्शन में है।

होशियारपुर, मो. 09464064398

सदा सत्य को ग्रहण करो

1) जैसा आंखों से देखा और कानों से सुना वैसा ही कहना सत्य है। अर्थात् इन्द्रियों से जैसा प्रत्यक्ष किया वैसा ही मानना। जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना सत्य है।
2) जो सृष्टि क्रम के अनुकूल है वह सत्य है और सृष्टि के नियम के प्रतिकूल है वह सब असत्य है। जैसे कोई कहे कि बिना माता–पिता के या बन्ध्या के पुत्र उत्पन्न हुआ तो यह असत्य है।

प्रस्तुतकर्ता– देवराज आर्य मित्र
नई दिल्ली

संक्रमण काल में आर्य समाज की आवश्यकता

● मनुदेव 'अभय'

आर्य समाज की स्थापना को 139 वर्ष पूर्ण हो गये। आर्य समाज के अनेक कार्यक्रम जैसे– समाज सुधार, शिक्षा प्रसार, नारी–सशक्तीकरण तथा सामाजिक समरसता शासकीय व्यवस्था पर चलाये जा रहे हैं। देश के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद के कथनानुसार देश के संविधान पर आर्य समाज के अनेक कार्यक्रमों की छाया स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ती है। अनेक गणमान्य नेता यदा यदा यह कहते सुने और देखे गये हैं कि अब आर्य समाज अप्रासंगिक हो गया है। उनके कथन का अर्थ वे ही जानें परंतु वर्तमान राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक स्थितियों को देखकर स्पष्ट रूप से यह दिखाई पड़ रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् मूल्य आधारिक तथा नैतिकता के अभाव में देश संक्रमण काल से गुजर रहा है। अब तो पानी नाक तक आ पहुँचा है। अब प्रजातंत्रात्मक राज्य व्यवस्था के स्थान पर गणतंत्रात्मक संविधानानुसार देश चलाया जा रहा है। देश प्रायः एक हजार वर्ष की गुलामी से बड़े त्याग और परिश्रम से स्वतंत्र हुआ है। और देश को खंडित आजादी प्राप्त हुई। यद्यपि संविधान में प्रजातंत्रीय व्यवस्था का ताना बाना रखा गया, परंतु सत्ता की बागडोर संभालने वाले नेतागण विदेशी शिक्षा व्यवस्था से तैयार होने के कारण श्रेष्ठ प्रजातंत्र के गौरव की गंभीरता को नहीं समझ सके। यह उल्लेखनीय है कि जब ब्रिटिश सत्ता में सूर्य डूबने नहीं पाता था तब महारानी विक्टोरिया के द्वारा सन् 1857 की महान क्रांति के पश्चात भारत के संबंध में जो राजनैतिक घोषणा की गई थी, उसी समय त्वरित महर्षि दयानन्द ने अपने कालजयी ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में करारा उत्तर देते हुए कहा था– मातृतुल्य सुखदायी विदेशी राज्य की अपेक्षा स्वदेशी और सुराज्य सर्वाधिक श्रेष्ठ होता है। वे अपनी प्रार्थनाओं में परमात्मा को राजाधिराज महान सम्राट तथा विश्वअधिपति संबोधित कर इस लौकिक और विदेशी राज्य के विरुद्ध अपनी भावनायें और विचार व्यक्त करते थे। इतना ही नहीं उन्होंने 1875 को आर्य समाज की स्थापना कर आर्य समाज के सभी नियम और उपनियम प्रजातंत्रात्मक पद्धति के अनुसार बनाये, जिनमें त्याग, चरित्र तथा अध्यात्म के तत्त्वों को प्रमुखता दी गयी। वे सारे नियम उपनियम आज भी आर्य समाज को संगठित किए हुए हैं तथा विश्व की समस्त आर्य समाजों पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली का नियंत्रण है। आर्य समाज की उपलब्धियां इस प्रकार है–

स्वराज्य की सुराज्य की ओर

सम्प्रति, यह काल 'संक्रमण काल' कहा जा रहा है। स्वतंत्रता आन्दोलन में प्रजातंत्रीय राज्य–व्यवस्था की घोषणा की गई थी। परन्तु देश के कुछ नेताओं ने पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होने के कारण प्रजातंत्र की अपेक्षा गण तंत्रात्मक राज्य–व्यवस्था स्थापित कर दी। महर्षि दयानन्द ने वेद के आधार पर प्रजातंत्रीय स्वराज्य का प्रतिपादित किया है। इस स्वराज्य को 'सुराज्य' बनाने का का गुरुतर कार्य आर्य समाज ही सम्पन्न कर सकता है– लेखक।

महर्षि दयानन्द का शिक्षा–दर्शन

● डॉ. विनोदचन्द्र विद्यालंकार

शिक्षा का स्वरूप क्या हो, अध्ययन–अध्यापन का अधिकार किसे हो, आचार्य वर्ग के संरक्षण में रहते हुए किस प्रकार का जीवन व्यतीत करें, उन्हें कौन–कौन सी विद्याएं पढ़ायी जायें, पठन–पाठन विधि क्या हो, शिक्षा का माध्यम क्या हो, आदि बातों पर महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थ मे विशद रूप से प्रकाश डाला है। उनके द्वारा प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली (गुरुकुल शिक्षा प्रणाली) के मूल तत्त्व निम्नलिखित हैं :–

1. महर्षि के मत में बालक–बालिका के तीन शिक्षक होते है– माता, पिता और आचार्य। बच्चों के प्रशिक्षण तथा उनकी शक्तियों के विकास का सूत्रपात माता–पिता द्वारा किया जाता है तथा विद्याध्ययन के अंतर्गत पढ़ना–पढ़ाना आचार्यों का दायित्व है– ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा उन्हीं के द्वारा दी जाती है।
2. बालक–बालिकाओं को शिक्षा के लिए भेजना माता–पिता के लिए अनिवार्य होना चाहिए।
3. बालक–बालिकाओं या स्त्री–पुरुषों की पाठशाला एक–दूसरे से दो कोस दूर होनी चाहिए। कन्याओं की पाठशाला में अध्यापक, भृत्य, अनुचर आदि स्त्री तथा बालकों की पाठशाला में पुरुष ही होने चाहिए। एवं महर्षि सह–शिक्षा के प्रबल विरोधी थे।
4. गुरुकुल में सब विद्यार्थियों को एक समान भोजन, वस्त्र, निवास, शिक्षा आदि दी जानी चाहिए। वहाँ सब विद्यार्थी एक साथ निवास करें।
5. गुरुकुल नगरों और ग्रामों से चार कोस दूर होने चाहिए, ताकि विद्यार्थियों पर वहाँ के वातावरण का कुप्रभाव न पड़े।
6. गुरुकुल में प्रविष्ट बालकों और बालिकाओं का अध्ययन–काल में अपने माता–पिता से कोई सम्पर्क नहीं होना चाहिए। महर्षि के शब्दों में, "उनके माता–पिता अपने सन्तानों से वा सन्तान अपने माता–पिताओं से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र–व्यवहार एक–दूसरे से कर सकें जिससे संसारी चिन्ता से रहित होकर केवल विद्या बढ़ाने की चिन्ता रखें। (सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास)
7. गुरुकुलों में विद्यार्थियों का जीवन तपस्यामय होना चाहिए और उन्हें ब्रह्मचर्य व्रत का अविकल रूप से पालन करना चाहिए।
8. गुरुजनों का अपने शिष्यों के साथ वही सम्बन्ध होना चाहिए, जो माता–पिता का सन्तान के साथ होता है। आठ वर्ष की आयु में जब माता–पिता अपनी संतान को गुरुकुल भेज देते हैं तो उसका स्थान गुरु व अध्यापक ले लेते हैं और वे बालक–बालिकाओं की देखभाल उसी प्रकार से करते हैं, जैसे माता–पिता द्वारा की जाती है।
9. गुरुकुलों में जो व्यक्ति अध्यापन का कार्य करें उन्हें न केवल विद्वान् ही होना चाहिए अपितु यह भी आवश्यक है कि वे धार्मिक व सदाचारी भी हों। महर्षि के मतानुसार, "जो अध्यापक पुरुष व स्त्री दुष्टाचारी हों, उनसे शिक्षा न दिलावें, किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य है।"

महर्षि के शिक्षा–दर्शन के सम्यक रूप से समझने के लिए कतिपय महत्वपूर्ण बिन्दुओं का विवेचन अभिप्रेत होगा।

1. सर्वशिक्षा अभियानः महर्षि दयानन्द की संकल्पना

भारत में शिक्षा प्राप्त करने वाले बालक–बालिकाओं और साक्षर व्यक्तियों के प्रतिशत में कमी को देखते हुए 'सर्व शिक्षा अभियान' या 'सर्व साक्षरता अभियान' का विज्ञापन मीडिया के सभी साधनों के माध्यम से बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। इसका उद्देश्य प्रत्येक भारतवासी को अपने बच्चों को शिक्षा देने के लिए प्रेरित करना है तथा मानव मात्र को साक्षर बनाना है। इन विज्ञापनों को देख–पढ़ कर सामान्य जन की यह धारणा हो सकती है कि सरकार द्वारा यह कोई नया प्रयोग किया जा रहा है और इसे उपलब्धि के रूप में उजागर किया जा सकता है।

वस्तुतः यह आन्दोलन कोई नया नहीं है। इसकी नींव महर्षि दयानन्द ने डाली थी। स्वामी जी की सम्मति में सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभाव रूप आभूषणों को धारण कराना माता–पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। उन्होंने विधान किया था कि प्रत्येक माता–पिता 9 वर्ष की आयु होने पर सन्तानों को पढ़ने के लिए आचार्य कुल यानी विद्यालय में अवश्य भेज दें। स्वामी जी के शब्दों में, **"जन्म से पांचवें वर्ष तक बालकों को माता, छठे से आठवें वर्ष तक पिता शिक्षा करें और नौवें वर्ष के प्रारंभ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्य कुल में अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्या दान करने वाली हों वहाँ लड़के और लड़कियों को भेज दें और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के लिए गुरुकुल भेज दें।"** (सत्यार्थ प्रकाश, द्वितीय समुल्लास)

महर्षि कृत यह व्यवस्था ऐच्छिक नहीं थी यानी जो चाहे वह अपने बच्चों को स्कूल में भेज दे और जो न चाहे, वह न भेजे, वरन इसका अनुपालन अनिवार्य था। यहाँ तक कि यदि कोई इसका पालन न करे तो उसके लिए उन्होंने दण्ड देने का

भी परामर्श दिया था :

"इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वे दण्डनीय हों।"

"राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का व लड़की किसी के घर में न रहने पावें, किन्तु आचार्य कुल में रहें।"

स्वामी जी निःसन्देह दूरद्रष्टा थे। वे जानते थे कि यदि शिक्षक सदाचारी एवं निःस्वार्थ भाव से शिक्षण–कार्य के लिए समर्पित होंगे, तभी वे अपने शिष्यों को उन्नति–पथ पर अग्रसर कर सकेंगे, अन्यथा उनका भविष्य धूमिल होने में कोई कसर नहीं रखेंगे। उन्होंने सत्यार्थ–प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में अपने भावों को कुछ यों व्यक्त किया है :

"जो अध्यापक पुरुष या स्त्री दुष्टाचारी हों उनसे शिक्षा न दिलावें किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों, वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने के योग्य हैं।

यही बात उन्होंने और बलपूर्वक व्यक्त की है :

"आजकल के सम्प्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरों को विद्या–सत्संग से हटा और अपने जाल में फंसा के उनका तन, मन, धन नष्ट कर देते हैं और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़कर विद्वान् हो जायेंगे तो हमारे पाखण्ड–जाल से छूट और हमारे छल को जानकर हमारा अपमान करेंगे, इत्यादि विघ्नों को राजा और प्रजा दूर करके लड़कों और लड़कियों को विद्वान् करने के लिए तन, मन, धन से प्रयत्न किया करें।"

(सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास)।

महर्षि दयानन्द का मन्तव्य यह भी था कि राजा या रंक किसी के भी बच्चे हों, विद्यालयों में उनके साथ समान व्यवहार करना चाहिए और उन्हें शिक्षा के समान अवसर प्रदान किये जाने चाहिए :

"सबको तुल्य वस्त्र, खानपान, आसन दिये जायें, चाहे वह राजकुमार व राजकुमारी हों, चाहे दरिद्र की सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिये।"

(सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास)

महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश में ही नहीं स्वरचित यजुर्वेद भाष्य में भी शिक्षा के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। वे मानते हैं कि सुशिक्षा पाये पशु जब उत्तम कार्य सिद्ध करते हैं तो फिर विद्या और शिक्षा युक्त मनुष्य लोग उत्तम कार्य क्यों सिद्ध नहीं करते हैं। उनका निर्देश है :

"विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्रियों का मुख्य कर्तव्य यही है कि जो पुत्र और पुत्रियों को ब्रह्मचर्य और सुशिक्षा से विद्वान् और विदुषी सुन्दर शील युक्त निरन्तर किया करें।"

(यजु. भाष्य 9.36 का भावार्थ)

"पिता, पितामह और प्रपितामहों को योग्य है कि वे अपने कन्या और पुत्रों को ब्रह्मचर्य, अच्छी शिक्षा और धर्मोपदेश से संयुक्त करके विद्या और उत्तम शील से युक्त करें।"

(यजु. भाष्य 19.37 का भावार्थ)

"माता, पिता और आचार्य का यही परम धर्म है जो सन्तानों के लिए विद्या और अच्छी शिक्षा की प्राप्ति कराना।"

(यजु. भाष्य 12.45 का भावार्थ)

वेद भाष्य में ऋषि ने अन्यत्र भी शिक्षा के महत्त्व का उल्लेख किया है। मानव–समाज के हित–कल्याण तथा उन्नति के लिए जो भी विचार महर्षि ने प्रस्तुत किये हैं, उन सबको क्रियात्मक रूप देने के लिए उत्तम शिक्षा का ही आश्रय लिया है।

यह कहा जा सकता है कि स्वामी जी गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के समर्थक थे और इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने यत्र–तत्र उक्त विचार व्यक्त किये, जबकि देश में गुरुकुलों की संख्या नगण्य है, सर्वत्र परम्परागत पद्धति वाले विद्यालय, महाविद्यालय हैं। इस सम्बन्ध में यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि भले ही स्वामी जी के मन में गुरुकुलों की संकल्पना हो, परन्तु उन्होंने अपने मन्तव्यों में एक आध स्थल को छोड़कर सर्वत्र पाठशाला या आचार्य कुल शब्द का प्रयोग किया है। यदि एक क्षण के लिए प्रथम पक्ष को मान भी लिया जाये तो भी स्वामी जी के विचार सर्व शिक्षा या सर्व साक्षरता या हर व्यक्ति को शिक्षा दिलाने अथवा सबको साक्षर बनाने का भाव का ही संकेत करते हैं। वस्तुतः स्वामी जी के विचारों को अक्षरशः आज भी क्रिया रूप में परिणत किया जा सकता है, बशर्ते कि शिक्षा को जीवन का अनिवार्य अंग बना दिया जाये।

2. शिक्षा का माध्यम

नवजागरण के पुरोधा महर्षि दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने तथा सरकारी कार्यों के लिए इसी का प्रयोग करने पर बल दिया। स्वरचित सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में उन्होंने लिखा था कि बच्चों की शिक्षा का प्रारंभ देवनागरी लिपि से कराया जाये। उनके द्वारा निर्धारित पठन–पाठन की विधि में संस्कृत और हिन्दी का प्रमुख स्थान था। राजकीय कार्यों और पारस्परिक व्यवहार में स्वामी जी इसी भाषा के प्रयोग पर बल देते थे। वे देश की उन्नति के लिए हिन्दी का प्रचार तथा प्रसार आवश्यक समझते थे। उनकी प्रबल इच्छी थी कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा अटक से कटक तक सभी भारतीय एक ही भाषा बोलने एवं लिखने लगें।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि स्वामी दयानन्द की मातृभाषा गुजराती थी, तथापि वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे और संस्कृत भाषा में ही उपदेश दिया करते थे। ब्रह्म समाज के नेता श्री केशवचन्द्र सेन का विचार था कि यदि स्वामी जी भारत में जनसाधारण द्वारा बोली और समझी जाने वाली हिन्दी में भाषण दें तो उनके उपदेशों से अधिक से अधिक लोग लाभान्वित हो सकेंगे। श्री सेन ने यह सुझाव स्वामी जी को दिया और स्वामी जी हिन्दी में उपदेश देने लगे। इस परिप्रेक्ष्य में हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने अपने भावों की अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार से की थी : **"मथुरा के प्रज्ञाचक्षु दण्डी विरजानन्द के बाद बंगाल के महापुरुषों ने ही स्वामी दयानन्द की शक्ति और क्षमता का सही अवलोकन किया। वह क्षण निश्चय ही हिन्दी भाषा के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जा चुका है, जब एक बंगला भाषाभाषी के आग्रह पर एक गुजराती भाषाभाषी ने प्रचलित लोकभाषा में बोलना और लिखना स्वीकार किया।"** उनका पहला हिन्दी व्याख्यान मई 1874 में काशी में हुआ।

स्वामी जी द्वारा हिन्दी को अपनाने का एक अन्य कारण उनमें राष्ट्रीय एकता की भावना को सुदृढ़ बनाने की आकांक्षा का होना था। स्वामी जी की जीवनी के लेखक आस्ट्रेलिया निवासी श्री जोर्डन्स के शब्दों में, **"बनारस से लाहौर तक तथा बम्बई से वे (दयानन्द) जहाँ भी गये उन्होंने हिन्दी का व्यवहार किया। यह केवल सुविधाजनक नीति ही नहीं थी, किन्तु यह सिद्धान्त की बात थी, क्योंकि हिन्दी समूचे उत्तर भारत में समझी जाती थी। हिन्दी के लिए भारत में फूट डालने वाली प्रवृत्तियों पर विजय पाने का कारण थी। इससे विभिन्न राज्यों और नीतियों तथा वर्गों में एकता को पुष्ट किया जा सकता था।"** स्वामी जी से एक बार पूछा गया था कि हमारा देश कब अपनी पुरानी गरिमा और समृद्धि को प्राप्त करेगा तो उन्होंने उत्तर दिया था कि जब धर्म, भाषा तथा उद्देश्यों की एकता होगी। उनकी प्रबल इच्छा थी कि भारतीय हिन्दी का अध्ययन करें ताकि राष्ट्रीय एकता पुष्ट हो सके।

इसी अवधारणा के साथ उन्होंने अपने सभी ग्रंथ हिन्दी में लिखे। उन्हीं के शब्दों में, **"मैंने आर्यावर्त में भाषा का ऐक्य सम्पादन करने के लिए ही अपने सकल ग्रन्थ आर्यभाषा में लिखे और प्रकाशित करवाये हैं।"** स्वलिखित "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" के 'वेदाना नित्यत्व विचार' प्रकरण में उन्होंने लिखा है– **"जो किसी देशभाषा को पढ़ता है, उसको उसी देशभाषा का संस्कार होता है। इसलिए उन्होंने देशीय भाषाओं से पहले देवनागरी अक्षरों के अभ्यास पर बल दिया है।"** एक पंजाबी भक्त द्वारा स्वामी जी से उनके ग्रंथों का उर्दू भाषा में अनुवाद करने की अनुमति मांगे जाने पर स्वामी जी ने उससे कहा, **"भाई, मेरी आँखें तो उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं, जब कश्मीर से कन्या कुमारी तक सब भारतीय एक भाषा को समझने और बोलने लग जायेंगे। जिन्हें सचमुच मेरे ग्रन्थों को जानने की इच्छा होगी, वे आर्यभाषा का सीखना अपना कर्त्तव्य समझेंगे।"** कुछ इसी प्रकार की शब्दाभिव्यक्ति स्वामी जी ने मैडम ब्लैवत्सकी को लिखे पत्र में की थी– **"मेरा विचार आपको अनुवाद करने से रोकने का नहीं है, क्योंकि बिना अंग्रेजी अनुवाद के यूरोपियन जातियाँ सत्य–असत्य के प्रकाश को नहीं पा सकतीं, किन्तु भारत की आर्यजनता मेरे भाष्य के अंग्रेजी में प्रकाशित होने पर संस्कृत और हिंदी का अध्ययन नहीं करेंगी, जो मेरा मुख्य उद्देश्य है।"**

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि महर्षि दयानन्द ने अंग्रेजी भाषा के अध्ययन–अध्यापन की उपेक्षा नहीं की। वे तो मानते थे कि बाल्यावस्था में देवनागरी अक्षरों के साथ–साथ अन्यदेशीय भाषाओं का भी ज्ञान कराना प्रारम्भ कर दिया जाये। उनकी सम्मति में विदेशी भाषा को पढ़ना एक बात है और उसे शिक्षा का माध्यम बनाना उससे भिन्न बात है।

3. महर्षि दयानन्द सम्मत पठन–पाठन विधि

महर्षि दयानन्द ने शिक्षा विषयक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए यह निर्देश दिया था कि किन विषयों का और कितनी अवधि तक अध्यापन कराना चाहिए। उनके अनुसार शिक्षा में वेद, वेदांग, संस्कृत भाषा एवं आर्ष ग्रंथों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। उनका मानना था– **"आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, "बहुमोतियों का पाना"** (सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास)। वे संस्कृत भाषा के अध्ययन के लिए पाणिनि मुनिकृत शिक्षा और अष्टाध्यायी एवं पतंजलि कृत महाभाष्य का शिक्षण आवश्यक मानते थे, क्योंकि उनकी सम्मति में व्याकरण का समुचित रूप से ज्ञान हो जाने पर वैदिक एवं लौकिक शब्दों का भली–भांति बोध हो सकता है। इस अध्ययन के लिए उन्होंने तीन वर्ष की अवधि नियत की थी। इसके बाद निरुक्त और निघण्टु (6–8 महीने), छन्द (चार महीने), मनुस्मृति, वाल्मीकीय रामायण और महाभारत के चुने हुए अंश (एक वर्ष); मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य, वेदान्त तथा दस उपनिषद् (दो वर्ष), और फिर ऐतरेय, शतपथ, गोपथ और साम इन चार ब्राह्मणों तथा चारों वेदों

(छह वर्ष) के अध्ययन का विधान किया था। इसके साथ ही आयुर्वेद (चिकित्सा शास्त्र–4 वर्ष), धनुर्वेद (युद्ध विद्या तथा राजनीति शास्त्र–दो वर्ष), गान्धर्व वेद (संगीत शास्त्र–दो वर्ष), अथर्ववेद (पदार्थ विद्या तथा शिल्प विद्या), ज्योतिष शास्त्र (अंकगणित, बीजगणित, भूगोल, खगोल और भूगर्भ विद्या) और यन्त्र कला की शिक्षा के लिए भी समुचित व्यवस्था का आदेश दिया है। (द्रष्टव्य सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास)।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि उक्त विषय छात्र–छात्राओं को अनिवार्य रूप से पढ़ाए जायें या रुचि व आवश्यकता के अनुरूप पढ़ने का विकल्प खुला हो। इस प्रश्न का उत्तर महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में स्वयं दे दिया है: **"जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और व्यवहार की विद्या न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिए वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिए, क्योंकि इनके सीखे बिना सत्यासत्य का निर्णय, पति आदि के अनुकूल, वर्तमान, यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन–वर्धन और सुशिक्षा करना, घर के सब कार्यों को जैसा चाहिए वैसे करना–कराना, वैद्यक विद्या से औषधवत् अन्नपान बनाना और बनवाना नहीं कर सकतीं जिनसे घर में रोग कभी न आवे और सब लोग सदा आनन्दित रहें। शिल्प विद्या के जाने बिना घर का बनवाना, वस्त्र–आभूषण आदि बनाना–बनवाना, गणित विद्या के बिना सबका हिसाब समझना–समझाना, वेदादि शास्त्र विद्या के बिना ईश्वर और धर्म को न जान के अधर्म से कभी न बच सके।"**

4. शिक्षा में विज्ञान का स्थान

महर्षि दयानन्द ने विज्ञान की शिक्षा को भी समान महत्त्व दिया है। सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में वे लिखते हैं– **"अथर्ववेद कि जिसको शिल्पविद्या कहते हैं, उसको पदार्थ गुण, विज्ञान, क्रिया कौशल, नानाविध पदार्थों का निर्माण, पृथिवी से लेकर आकाश पर्यन्त की विद्या को यथावत् सीख के.... दो वर्ष में ज्योतिषशास्त्र, सूर्य सिद्धान्तादि (जिसमें बीजगणित, अंक, भूगोल और भूगर्भ विद्या है) को यथावत् सीखें। तत्पश्चात् सब प्रकार की हस्तक्रिया, यन्त्रकला आदि को सीखें।"** वेदभाष्य में महर्षि ने अनेक स्थानों पर विज्ञान पढ़ने–पढ़ाने और शिल्प की शिक्षा देने पर बल दिया है। उदाहरणार्थ, यजुर्वेद भाष्य के निम्न उद्धरण द्रष्टव्य हैं–

"मनुष्य लोग जैसे–जैसे विद्वानों से संग के विद्या को बढ़ावें वैसे–वैसे विज्ञान की रुचि वाले होवें।"

(यजुर्वेद भाष्य 20.80)

"मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्मा अध्यापक और उपदेशकों से विद्या और सुशिक्षा अच्छे प्रकार ग्रहण करके विज्ञान की वृद्धि सदा किया करें।"

5. महर्षि के शिक्षा–दर्शन का मूलाधार : आश्रम व्यवस्था

शिक्षा–संस्थाओं के एक समान भोजन–परिधान–निवास की व्यवस्था तभी हो सकती है, जब छात्र–छात्राएं गुरुजनों के सान्निध्य के एक साथ छात्रावास (आश्रम) में निवास करें और उन पर गुरुजनों का पूर्ण नियंत्रण हो, वे पूर्णतया ब्रह्मचर्य का पालन करते हों तथा शिक्षा काल में माता–पिता का किसी प्रकार का सम्पर्क न हो। महर्षि दयानन्द इसी व्यवस्था के प्रबल पक्षधर थे और आश्रम–व्यवस्था को गुरुकुल शिक्षा–प्रणाली का मूलाधार मानते थे। महर्षि दयानन्द स्थापित पाठशालाओं एवं गुरुकुलों में इस आश्रम–व्यवस्था का पूरी तरह पालन होता था। पर वर्तमान में इसमें पर्याप्त शिथिलता आ गई है।

महर्षि दयानन्द का शिक्षा–दर्शन सर्वतोभावेन पूर्ण है। उनके शिक्षा–विषयक सिद्धान्तों को क्रियान्वित करने से एक ऐसे समाज का निर्माण हो सकेगा, जिसमें सबको एक समान अवसर प्राप्त हो और जो पूर्णतया सामाजिक न्याय पर आधारित हो। वस्तुतः महर्षि प्रतिपादक शिक्षा–प्रणाली एक ऐसे क्रान्तिकारी एवं प्रगतिशील कार्यक्रम का श्रीगणेश करने में समर्थ है जिससे मानव समाज के सब अन्याय, विषमता और शोषण दूर हो सकेंगे। संक्षेप में कहा जाये इस प्रणाली का सार्वभौम और सार्वकालिक महत्त्व है।

– 217, आर्य विरक्त (वानप्रस्थ+संन्यास) आश्रम, ज्वालापुर–249407, हरिद्वार

परम पिता की पीड़ा

● **डॉ. सुरेन्द्र कुमार आर्य**

पाठक वृन्द, पिता भी सबके अलग–अलग हो सकते हैं पर परम पिता सबका एक होता है। जितनी पीड़ा पिता को होती है उससे अधिक पीड़ा परम पिता को होती है। कैसे? एक घटना का संकेत करता हूँ। मैं रास्ते में जा रहा था, मैंने भीड़ देखी, मैं ठिठक गया। मैंने देखा कि एक शराबी युवक अपने पिता जी को घर से निकालने पर तुला था। पिताजी गिड़गिड़ा रहे थे। भीड़ में एक स्वर उभरा, "तुम अपने पिता जी को घर से क्यों निकाल रहे हो?" इस पर उस शराबी युवक ने उत्तर दिया, "पिता जी, पहले प्रमाण दें कि वे ही उसके पिता जी हैं?" यह सुनकर सभी स्तब्ध रह गए कि यह क्या कह रहा है। तब एक वृद्ध सज्जन ने कहा, "बेटा, पिता को पिता होने का प्रमाण नहीं देना पड़ता। संसार में कुछ ऐसी बातें होती हैं जो कहने मात्र से मान ली जाती हैं।" "कैसे?" उस युवक ने प्रश्न किया।

तब उस वृद्ध सज्जन से उसे समझाते हुए कहा, "जब माँ बच्चे को अपने पति की गोद में देती है तो बच्चे से कहती है, बेटा, ये तेरे पिता जी हैं और बेटा बिना किसी प्रमाण या तर्क के स्वीकार कर लेता है।"

यह सुनकर मुझे संतोष हुआ पर फिर मैं तत्काल चिन्ता ग्रस्त हो गया। मैंने सोचा, यह तो शरीरधारी पिता की बात थी लेकिन जो अशरीरी, अनिर्वचनीय, निराकार, अनजाना, अपरिचित परम पिता हो, वह अपनी संतानों को कैसे बताएगा कि मैं ही तुम्हारा पिता हूँ। क्या गुजरेगी उस पर जो पिता होने पर पिता कहलाने से वंचित हो। जिसको उसके अविद्या, अहंकार ग्रस्त पुत्र मानस–गृह से बाहर धकेलने के लिए कटिबद्ध हों। जो रो इसलिए नहीं सकता कि लोग उसे असहाय समझेंगे और हँस इसलिए नहीं कह सकता कि कहीं लोग उसे पागल न समझ लें। जानते हैं आप कौन है वह? वह है आपका और हमारा परम पिता परमात्मा। पिता ही, परम पिता होने पर भी पिता कहलाने के सौभाग्य से वंचित। यही है परम पिता की पीड़ा।

क्या आप और हम भी चाहते हैं कि परम पिता परमात्मा भी अपने पिता होने का प्रमाण दे? वह तो पग–पग पर अपने पिता होने का प्रमाण दे रहा है। यदि आप और हम उसकी भाषा न समझ पायें तो यह हमारा दोष है। वह तो पिता के रूप में अपने संतानों को संदेश देते हुए कहता है कि तुम्हारे हृदय और तुम्हारे विचार एक जैसे हों, मैंने तुम्हें जो ज्ञान और भोग प्रदान किए हैं, तुम उनका उपभोग करो–

समानीव आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

यदि आप इतने से सन्तुष्ट न हों तो दूसरा उदाहरण देता हूँ। परमात्मा ने अपने परम पिता होने का प्रमाण वैदिक ज्ञान के माध्यम से दिया है। कौन ऐसा पिता होगा जो अपनी संतान को ज्ञान प्रदान न करे। यदि परमात्मा ने हमें शरीर दिया होता और ज्ञान न दिया होता तो हम परमात्मा पर सामर्थ्यहीन होने का आरोप लगाते। परन्तु उसने तो सारा ज्ञान पहले ही वेदों के माध्यम से उड़ेल दिया है। और मनुष्य को सचेत कर दिया है कि **'न कर्म लिप्यते नरे'** अर्थात् तुझे कर्म करते हुए जीवन यापन करना है तथा कर्मों में लिप्त नहीं होना है। अनासक्त होकर समस्त कर्म करने हैं। इस पर भी यदि कोई नासमझ बालक परम पिता परमात्मा के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगा दे और पूछे कि परम पिता ने हमें कौन सा ज्ञान दिया है तो इसके उत्तर में हम एक वेद मंत्र उद्धृत कर सकते हैं जिसमें चारों वेदों के शाश्वत ज्ञान की चर्चा की गई है:

तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः
सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्
यजुस्तस्मात् अजायत।।

कई बार आपने देखा होगा कि यदि पुत्र अधिक होशियार और प्रतिभा सम्पन्न है तो पिता जी उसे दूसरे पुत्रों की उपेक्षा अधिक वस्तु या सुविधा प्रदान कर देते हैं। उसी प्रकार परम पिता ने भी स्पष्ट शब्दों में घोषणा कर दी है कि मैंने आर्य (श्रेष्ठ विचारों वाले व्यक्ति) के लिए यह भूमि प्रदान की है: **'अहं भूमिमदामार्याम्'**। समाज में ऐसा देखा जाता है कि यदि पिता डॉक्टर है तो वह अपने बेटे को भी डॉक्टर बनाना चाहता है। इसी प्रकार वेद भी हमें संदेश देते हैं कि हे ईश्वर की सन्तानो, यदि तुम जीवन में कुछ बनना चाहते हो तो अपने पिता (विष्णु) के महान कार्यों को देखो और उनका अनुसरण करके अपने जीवन को सार्थकता प्रदान करो।

'विष्णोः कर्माणि पश्यत
यतो व्रतानि पस्पशे।'

हम उस परम सत्ता के प्रति कितने अविश्वासी हैं कि हम बस के ड्राइवर पर विश्वास करके आँख मीचकर बस में ही सो जाते हैं परन्तु उस परमात्मा पर विश्वास नहीं करते हैं। हम प्रार्थना भी करते हैं तो सशंक भाव से, मंत्रोच्चारण भी करते हैं तो मन में यह भाव रहता है कि पता नहीं, परमात्मा सुन रहा होगा या नहीं? यह देखकर उस परम पिता पर क्या गुजरती होगी? प्रायः हर नायालक पुत्र की अपने पिता से यही शिकायत रहती है कि आपने मुझे क्या दिया? यही बात परम पिता परमात्मा के बारे में भी कही जाती है। लेकिन ईश्वर ने हमें जितना दिया है, क्या हम उसके महत्त्व को समझ पाये हैं? कितना सुन्दर, सुगठित, बलिष्ठ शरीर, शरीर में कर्मेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियों से सुन्दर और सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियों से सूक्ष्म मन, मन से सूक्ष्म बुद्धि, बुद्धि से सूक्ष्म आत्मा और आत्मा से भी सूक्ष्म परमात्मा हमारे हृदय में आसन जमाये बैठा है फिर भी हम शिकायत करते हैं कि कहाँ है परमात्मा? क्या करता है वह हमारे लिए। यह देखकर परमात्मा रोता है। प्रातःकाल जो ओस गिरती है, वही

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

पत्र/कविता

बोध उसी भगवान का संशय करता दूर

(दोहे)

अपने को जाने नहीं, मानव उसे न मान।
जाने अपने आप को, मानव उसको मान।।

अपना स्वामी आप हैं, उसे रथी लो जान।
गर लगाम हो हाथ में, मंजिल पक्की मान।।

वानर के वंशज नहीं, आप खुद को जान।
भूल गये तुम कौन हो, लो खुद को पहचान।।

काया तो छाया निरी, दौड़ रहा बेकार।
काया का स्वामी पकड़, कर ले बेड़ा पार।।

घट भीतर जो मैल है, बाहर जाता दीख।
अपने भीतर झाक कर, झाड़ू देना सीख।।

देखो सबमें आत्मा, समझो आप समान।
वही पाये परमात्मा, ऐसा ही लो मान।।

राग द्वेष से दूर हो, खुद को लेता जीत।
ऐसा ही मानव सदा, सबके मन का मीत।।

अपना रूप विचार कर, अपने को पहचान।
स्वामी–सेवक भेद को, तब पायेगा जान।।

बटन दबाते ही तुरत, ज्यौं प्रकाश हो जाय।
यूं ही अन्तर ज्ञान से, मुख पर आभा छाय।।

किरण एक प्रकाश की, तम को करती दूर।
बोध उसी भगवान का, करता संशय दूर।।

–नरेन्द्र आहुजा 'विवेक'
पंचकूला

क्या गीता का ज्ञान वास्तविक ज्ञान है जो श्री कृष्ण ने अर्जुन को दिया था?

वर्तमान भगवदगीता में 18 अध्याय और 700 श्लोक हैं। यह महाभारत ग्रंथ का एक भाग है जिस ग्रंथ के रचियता महामुनि वेदव्यास माने जाते हैं। युद्ध आरंभ होने से पहले संजय ने श्री कृष्ण अर्जुन का संवाद राजा धृतराष्ट्र को सुनाया था। जब दोनों ओर की सेनाओं ने युद्ध करने के लिए कुरूक्षेत्र में आमने सामने होकर शंख, ढोल, नगारे इत्यादि बजाये तब अर्जुन ने अपने रथ के सारथी श्री कृष्ण से कहा कि मेरे रथ को दोनों सेनाओं के मध्य में खड़ा कर दें ताकि मैं देख सकू कि हमने किस किस के साथ युद्ध करना है। श्री कृष्ण ने दोनों सेनाओं के बीच भीष्म द्रोणाचार्य और सब वीरों के सामने रथ को खड़ा करके कहा इन इकटठे हुए सब कौरवों को देखो। उन सब को देख कर अर्जुन ने धनुष को त्याग कर रथ के पिछले भाग में बैठ गया और युद्ध करने से मना कर दिया।

उसके बाद श्री कृष्ण ने अर्जुन के बीच तो संवाद हुआ उसे संजय के अतिरिक्त और किस ने सुना? क्या यह संवाद जो कम से कम तीन घंटे चला जो 700 श्लोकों का था और किसी ने सुना? क्या जब तक यह संवाद चलता रहा तब तक दोनों ओर की सेनायें खड़ी रहीं जबकि युद्ध आरंभ होने के साज बज चुके थे।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि अध्याय 3 के अनुसार अन्न की उत्पत्ति वर्षा से और यज्ञ द्वारा वर्षा होने इत्यादि तथा नवम् अध्याय में योगी के साधना संबंधी नियम, अध्याय 12 में निराकार की अपेक्षा सगुणोपासना अति श्रेष्ठ, अध्याय 17 में भोजन संबंधी विचार तथा दान इत्यादि प्रासंगिक जानकारियाँ श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिये जाने की क्या आवयश्कता थी।

वास्तव में कौरवों ने पांडवों पर बहुत अत्याचार किये थे। पांडु के मर जाने के बाद युधिष्ठर को राजा बनाना चाहिये था। परन्तु अंधा धृतराष्ट्र स्वंय राजा बनकार बैठ गया। इसलिये उसका पुत्र दुर्योधन युवराज बनना चाहता था। फिर भी धृतराष्ट्र ने पांडवों को इन्द्रप्रस्थ का राज्य दे दिया। पाण्डव कौरवों के दो बरार जुआ खेले और हार गये। अपने भाइयों और द्रौपदी को भी युधिष्ठिर ने जुये में दाँव पर लगा दिया। जिससे द्रौपदी का बड़ा अपमान हुआ।

भीम को विष देकर नदी में फेंका गया। पांडवों और उनकी माता कुन्ती को लाक्षाग्रह में जलाकर मारने का यत्न किया गया। श्रीकृष्ण ने सन्धि कराने का यत्न किया तो उन्हें बंदी बनाने का यत्न किया गया और पांडवों को पांच गांव भी कौरवो ने नहीं दिये। श्रीकृष्ण पांडवों के रिश्तेदार थे इसलिये उनके साथ अन्याय होता नहीं देखना चाहते थे। इसलिये अन्त में युद्ध करने का ही निर्णय हुआ परन्तु अर्जुन पितामह भीष्म और गुरु द्रोणाचार्य, कृपाचार्य इत्यादि के साथ युद्ध नहीं करना चाहता था। इसलिये उसने युद्ध करने से मना कर दिया।

ऐसी स्थिति में श्री कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध करने के लिये तैयार किया और आत्मा की अमरता का उपदेश दिया होगा स्वाभाविक मृत्यु तो सब की होती है। इसलिये मृत्यु से क्यों डरना? अन्यायकारियों का नाश करना ही चाहिये। इस पर अर्जुन युद्ध करने को उद्यत हो गया। बड़ा भारी युद्ध हुआ सब कौरव और उनके साथी मारे गये पांडवों की विजय हुई और युधिष्ठर राजा बने।

वर्तमान भगवदगीता में बहुत ही अप्रसांगिक बातें हैं परन्तु कुछ अच्छे उपदेश भी हैं। इसलिये यह गीता का उपदेश वास्तविक तो नहीं है। महाभारत का नाम पहले जय था परन्तु समय बीतते बीतते उसमें बहुत प्रक्षेप हुआ है यह सब विद्वान मानते हैं। गीता में भी प्रक्षेप हुआ है उसमें वेद विरुद्ध मिलावट हुई है। और श्री कृष्ण को ही मनुष्य रूप में ईश्वर माना गया है, जब कि वेद तथा अन्य शास्त्रों में ईश्वर को निराकार ही माना है। इसलिये असली गीता का ज्ञान तो किसी के पास नहीं है। महाभारत में एक प्रसंग आया है जिसका वर्णन अश्वमेध पर्व में इस प्रकार किया गया है कि युद्ध के बाद जब श्री कृष्ण द्वारिका जाने वाले थे तो अर्जुन ने उनसे कहा कि आप ने युद्ध होने से पहले मुझे जो ज्ञान था वह मैं भूल गया हूँ। एक बार मुझे वह उपदेश सुना दें। श्री कृष्ण ने कहा अब मुझे भी यह याद नहीं है कि मैंने तुम्हें क्या उपदेश दिया था। इसलिये गीता का असली ज्ञान अब किसी के पास नहीं है। वास्तव में हमारे सब ग्रंथों में मिलावट हुई है। इसलिये सत्यासत्य का निर्णय करना कठिन हो गया है।

संसार के सब मतों के लोग ईश्वर को निराकार की मानते हैं अर्थात यहूदी, ईसाई, मुसलमान, सिख इत्यादि केवल कुछ हिन्दू निराकार के साथ–साथ ईश्वर को साकार भी मान कर मूर्तियों की पूजा करते है क्योंकि उनके सन्तों महन्तों और पुजारियों को इस से करोड़ो की आमदनी होती है। इसलिये उसे छोड़ना नहीं चाहते। परन्तु इस समय संसार में कोई भी ईश्वर नजर नहीं आता जिनकी अनेक प्रकार की मूर्तियों वाली बात है। यह सब अंध विश्वास ही है। भगवद्‌गीता में 4/7/6 में कहा है 'यदा यदा हि धर्मस्य गलानि भर्वति भारत' अर्थात् हे, अर्जुन! जब जब धर्म की हानि होती है तब तब में संसार में प्रकट होकर साधुओं की रक्षा तथा दुष्टों का संहार करता हूं। परन्तु महाभारत के बाद श्री कृष्ण आज तक कभी प्रकट नहीं हुये। मुसलमान बादशाहों ने अनेक मंदिरों तथा मूर्तियों को तोड़ा लाखों हिन्दुओं को मुसलमान बनाया गया तथा औरों का वध किया गया। परन्तु फिर भी श्री कृष्ण प्रकट नहीं हुये। इस समय संसार की कुल जनसंख्या 7 अरब के लगभग है। जिनमें श्री कृष्ण को मानने वालें केवल 98 करोड के लगभग हैं। बाकी 6 अरब हमारे धर्म के विरोधी हैं फिर भी श्री कृष्ण धर्म की रक्षा के लिये क्यों नहीं आते? वास्तव में ईश्वर तो जन्म मरण से रहित है और श्री कृष्ण को एक शिकारी ने तीर से मार दिया था इसलिये वह कैसे आ सकते हैं? निराकार ईश्वर उनको जहाँ भेजेगा वहीं उनका जन्म होता होगा।

अश्विनी कुमार पाठक
सी 233, नानकपुरा, नई दिल्ली 110021

****

पृष्ठ 09का शेष

परम पिता की पीड़ा ...

उसके आँसू है लेकिन कौन देखता है उसके आँसू? कभी–कभी वह हमारी नालायकी या शरारत को देखकर मुस्कराने लगता है। उसकी मुस्कान गुलाब में कितनी सुन्दर लगती है।

कितनी विचित्र बात है, हम परमात्मा से चाहते तो सब कुछ हैं लेकिन उसे देना कुछ नहीं चाहते। और वह तो चाहता भी कुछ नहीं है। धन–दौलत, चाटुकारिता, प्रशंसा, प्रार्थना, पूजा पाठ आदि उसे कुछ नहीं चाहिए। वह तो चाहता है आपका प्रेम और समर्पण, बस इसी से प्रसन्न होकर वह परमात्मा पिता के समान अपनी सन्तान के हित साधन में जुट जाता है। इसका संकेत वेद मंत्र में इस प्रकार किया गया है :

"स नः पितेव सूनवेऽग्ने भव।
सचस्वा नः स्वस्तये।

हमने ईश्वर को अपने शब्दों और भावों के अनुसार ऐसा जकड़ लिया हैं कि वह उससे बाहर नहीं निकल पाता और हम चाहते भी यही हैं कि हमारे अनुसार ढाला हुआ ईश्वर हमारे अनुसार ही कार्य करे। जब हम शुभकर्म करते हैं तो आशा करते हैं कि ईश्वर हमारे शुभ कर्मों का सुन्दर फल दे लेकिन जब दुष्कर्म करते हैं तो उम्मीद करते हैं कि वह अनदेखी कर दे।

परम पिता को तब पीड़ा होती है जब उसकी तुलना साधारण पिता से की जाती है। अपनी संतान की उपेक्षा वृत्ति से आहत होकर तब वह परम पिता चुपके से, धीरे से, आँख बचाकर अपनी संतान की हृदय–गुहा में छिप कर बैठ जाता है, यह सोच कर कि यदि किसी को मेरी आवश्यकता होगी तो वह स्वयं ढूँढ लेगा।

230, आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर (हरिद्वार)
मो. 9639149995

योग ऋषियों की महान देन है

● **डॉ. बिजेन्द्र पाल सिंह**

आज विश्व भर में योग का प्रचार है। देश विदेशों में राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, छात्र आदि सभी वर्गों का झुकाव व रुचि योग में है। इसीलिए 21 जून विश्व योग दिवस के रूप में घोषित किया जा चुका है तथा 21 जून को विश्व भर के देशों में योगाभ्यास किया भी गया। बड़े–बड़े योग शिविरों का आयोजन किया गया।

विडम्बना यह है कि जिस देश भारत से योग विश्व में गया है वहाँ रूप ही विकृत कर दिया गया है। महर्षि पतञ्ललि ने योग विषय पर विस्तृत वर्णन किया है। आज हम जब योग का नाम लेते हैं तो सीधे योगासनों पर ध्यान जाता है और योगाभ्यास अर्थात् आसनों को ही योग मान लिया जाता है जबकि योगासन योग नहीं हैं।

पतञ्जलि ऋषि के अनुसार **''योगश्चित्तवृत्ति निरोधः''** चित्त वृत्तियों का निरोध करना योग है। महर्षि के अनुसार अष्टांग योग जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हैं। यम नियमों का पालन किए बिना योगासनों का उचित लाभ नहीं होता जैसा कि यम के अन्तर्गत सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, नियम के अन्तर्गत शौच; स्वाध्याय, संतोष और ईश्वर प्रणिधान है।

यम नियम जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनसे हम बुराइयों से बचते व अच्छाइयों को ग्रहण करते हैं, जब तक हम अच्छाइयों को ग्रहण न करें श्रेष्ठ जीवन निर्माण नहीं कर सकते। न श्रेष्ठता का निर्वाह हो सकता है। इसके लिए हमारा आहार भी सात्विक, ऋतु दोषकाल, वय आदि के अनुसार होना चाहिए, सात्विक भोजन हो, चटपटा, तला; तैलीय। मांस वाला न होकर हल्का पौष्टिक व सुपाच्य तथा शाकाहार होना चाहिए जिससे हमारा स्वास्थ्य अच्छा रहे। भोजन जीने के लिए मात्रायुक्त विधिवित समयानुसार करें। भोजन व जो भी हम प्रयोग करते हैं धन, वस्त्र, घर आदि सब कुछ ईश्वर का है हमारा नहीं है; ऐसा विचार कर प्रयोग करें, त्याग भाव से प्रयोग करें। हमारी दिनचर्या विधिपूर्वक हो। प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में उठें, ईश्वर स्मरण करें। शौच–स्नान–प्रातः भ्रमण करें, परिधान समय ऋतु आदि के अनुसार तो हमारा व्यवहार श्रेष्ठ हो स्वास्थ्य का नित्य प्रति ध्यान रखें। ईश्वर की संध्या उपासना किया करें तथा व्यायाम आदि करें। योगासन विधिवत व्यायाम है जिसमें शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता, शरीर की ऊर्जा, मन की सुन्दरता निर्मलता शरीर को हृष्ट–पुष्ट, सुन्दर–स्वस्थ बनाए रखने का गुण है। योगासन से हमें रोगों से निवृत्ति व लम्बी आयु मिलती है, असमय बुढ़ापा नहीं आता।

महर्षि पतञ्जलि ने योग के लिए बताया है कि मन को वश में रखना आवश्यक है। हम अपनी चित्त वृत्तियों को नियमित करें तभी हम चिन्ता, भय, ईर्ष्या, लोभ, मोह, आदि से दूर रह आनन्द पूर्वक रह सकते हैं। योगासन करते रहे परन्तु मन बुराइयों, ईर्ष्या, लोभ, कामुकता, मोह आदि से युक्त हो तो योगाभ्यास से भी लाभ नहीं। योगाभ्यास तभी उपयुक्त है जब मन ईश्वर में लगा हो और बुराइयों से दूर हो तभी योगाभ्यास सार्थक होता हैं।

हमारा देश ब्रह्मचर्य प्रधान था। योग द्वारा हमारे पूर्वजों ने आनन्द को प्राप्त किया। परन्तु आज पिज्जा, फ्राइड फूड, कोल्ड ड्रिंक्स, बार, रेस्टोरेण्ट, होटल, फाइव स्टार जैसी पाश्चात्य संस्कृति ने भारत को एक किनारे पर भीड़ में खड़ा कर दिया है। सांस्कृतिक रूप से हम न स्वदेशी रहे न विदेशी, परन्तु इतना अवश्य है कि आज दुनिया भारत से बहुत कुछ ग्रहण कर रही है; हमारी संस्कृति व संस्कारों से लाभ उठा रही है परन्तु मृग मरीचिका की भांति हम पाश्चात्यता के पीछे दौड़ रहे हैं; अपनी भाषा, अपने संस्कारों, अपनी सभ्यता से दूर हो रहे हैं। हमारा क्या मानवता का धर्म वेद है उससे अलग हो पिछड़ रहे हैं। भौतिकवाद के मोह में अपनी वास्तविक प्राचीन धरोहर को पहचान नहीं पा रहे हैं। पश्चिमी लोग योग को आज योगा बना रहे हैं। योग के रूप में ही इसकी पहचान रहनी चाहिए, योग से ही विश्व को श्रेष्ठता मिल सकती है।

–गली नं. 2, चन्द लोक कालोनी,
खुर्जा–203131
मो. 08979794715

पृष्ठ 06का शेष

संस्कृत का अध्ययन ...

सन्देश ने जन्म भूमि को माता का स्थान दिया। शायद ऐसे भाव विश्व की किसी और भाषा में मिलें।

सम्मान देने वाली भाषा– गाय को माता का दर्जा, बादलों को पिता। पर्वत मण्डल को जल संरक्षक और औषधियाँ देने से जीवन दाता कहा। रोगहर्ता तुलसी, अजस्र प्राण वायु प्रदाता पीपल की महत्ता संस्कृत ने ही सिखाई है।

भेदभाव मिटाने और जोड़ने हेतु– अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम का मन्त्र संस्कृत भाषा की देन है। उदाहरण के तौर पर अमेरिका गये स्वामी विवेकानन्द जी का सम्बोधन "माई ब्रदर्स एण्ड सिस्टर्स" लेडिज एण्ड जेन्टिल मेन सुनने के आदी जनों को चमत्कारी लगा। यह संस्कृत भाषा द्वारा प्रदत्त भावों का ही चमत्कार था।

यही संस्कृत भाषा भारत में अधिकांश जनों को यज्ञ वेदी पर नाम दान देती है। पति–पत्नी के सृजनशील रिश्ते को जन्म देती। वृद्ध और बाल के साथ–साथ अतिथि सेवा असहाय और गरीब की सहायता हेतु प्रेरित करती है। रक्षा बन्धन जैसे पर्व तथा पुरोहित द्वारा यजमान को रक्षा सूत्र में बाँधने का सौभाग्य संस्कृत द्वारा ही हमें सदियों से प्राप्त रहा है। आदर्श वाक्य **"वयं रक्षामः"** पुलिस और सेना का, **"योग क्षेमं वहाम्यहं"** जीवन बीमा निगम, सत्यमेव जयते देश की विधायिका और न्यायपालिका के गौरव बढ़ा रहे हैं।

संस्कृत भाषा में– मैं (अहं) से पूर्व वह आता है स्त्री और पुरुष के लिए और त्वं– तुम का स्थान पहले आता है। अतिथि अर्थात् श्रेष्ठ वृद्धजनों एवं आश्रितों को सन्तुष्ट और सुखी करने पर ही मेरी श्रेष्ठता और बड़प्पन सार्थक होता है। तभी हम उत्तम पुरुष बनते हैं। यहाँ व्यक्ति और समाज की पहचान साधनों से नहीं साधना और गुणवत्ता एवं त्याग से होती है। यहाँ पदार्थों के भोग को जीवन नहीं कहते। बल्कि त्याग कर दूसरों को खिलाने, सुख देने की संस्कृति को यज्ञ कहते हैं। और यह प्रति संस्कृत और संस्कृति के उपासक का अपरिहार्य अंग है। गौ उपकार को स्वीकार करते हुए लिखा–

भुक्त्वा तृणानि शुष्काणि पीत्वा
तोऽवं जलाशयात्।
दुग्धं ददति लोकेभ्यो गावो
लोकस्य मातरः।। 1 ।।

वृक्षोपकार के लिए–

स्वयं तिष्ठति आतपे छायाफलं
च प्रयच्छति।
भो वृक्षाः शिवमस्तु वः।। 2 ।।

दोनों कथनों का सार है गौ जंगल से सूखे तृण खाकर, तालाब से पानी पीकर हमारे लिए मीठा दूध देती है। गौ के उपकार एवं गौ सेवक का उसके प्रति आदर विशेष संस्कृति को जन्म देता है।

दूसरे में वृक्षों के उपकार का वर्णन करते हुए लिखा आप खुद धूप में खड़े हो और हमारे लिए छाया और फल आदि देते हो। मैं तुम्हारा कल्याण चाहता हूँ।

और अन्त में अधिक विस्तार में न जाते हुए कामना है भारते संस्कृत संस्कृतिश्च महीयताम्। भारत में संस्कृत और संस्कृति लोक कल्याण के लिए जियें। भारत में संस्कृत के बिना संस्कृति कैसे बचेगी? संस्कृति विहीन भारत कैसा होगा? विचारणीय है।

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11 \6066\2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103 \2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 23-24\9 \2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर0 एन0 आई0 39 \57

डी.ए.वी. लारेंस रोड, अमृतसर में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जी को याद किया गया

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, लॉरेंस रोड, अमृतसर में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जी को श्रद्धांजलि अर्पित की गई। स्कूल के विद्यार्थियों ने इस अवसर पर एक विशेष प्रार्थना सभा का आयोजन किया। उन्होंने देशभक्ति में सबंधित कविताएँ और प्रेरणादायक गान भी प्रस्तुत किया। विद्यार्थियों को श्री तिलक द्वारा देश के भविष्य को संवारने के अभूतपूर्व योगदान की जानकारी दी गई। उन्हें एक महान विद्वान, समान–सुधारक और एक सशक्त पत्रकार बताया गया।

उनकी समाचार पत्रिका 'केसरी' जिसका प्रकाशन 1881 में हुआ था, ने लोगों में देशभक्ति की भावनाओं को उजागर करके सभी भारतीयों को संगठित किया। उनकी पत्रिका के द्वारा दिए गए नैतिकता के मूल्य और देशभक्ति की भावना आज भी पूरे देश में विद्यमान है। लोकमान्य जी द्वारा दिये गये देशभक्ति की भावना से ओत–प्रोत नारक "स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है" ने भारतीयों को स्वतंत्रता के संघर्ष में शामिल होने के लिए प्रेरित किया। विद्यार्थियों ने इस महान नेता की श्रद्धांजलि दी और देश की प्रगति और जिम्मेदार नागरिक बनने का प्रण लिया।

स्कूल की प्रधानाचार्य डॉ. (श्रीमती) नीरा शर्मा जी ने डॉ. तिलके के बारें में बताते हुए कहा कि उन्होंने विदेशी सरकार के विरुद्ध अपनी राजनैतिक संघर्ष को सदा जारी रखा और साथ ही साथ वे अच्छी शिक्षा के समर्थक भी थे। श्रीमती शर्मा ने कहा हमें हमेशा इन स्वतंत्रता सेनानियों और उनके द्वारा प्राप्त की गई आजादी का हमेशा सम्मान करना चाहिए। उनके जीवन में हमें यह प्रेरणा मिलती है कि हमें जीवन में सही दिशा की ओर बढ़ना चाहिए और वे सदा भी सभी भारतीयों के दिलों में जिन्दा रहेंगे।

ककराला (पंजाब) में वैदिक गतिविधियाँ

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा व आर्य युवा समाज पंजाब के तत्वावधान में सात दिवसीय वेद प्रचार समारोह डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल सी. सै. स्कूल ककराला में बड़े हर्षोल्लास से मनाया गया। जिसका शुभारम्भ विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री मनोज शर्मा जी के कर कमलों द्वारा हुआ। विद्यार्थियों द्वारा प्रतिदिन हवन यज्ञ में वेद मंत्रों का उच्चारण व वैदिक विचारधारा से सम्बन्धित भजन एवं भाषण देकर कार्यक्रम की शोभा बढाई। मंच संचालन श्री अनिल शास्त्री ने किया। स्वामी विवेकानंद हाऊस के सानिध्य में यज्ञ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। निर्णायक के रूप में अध्यापक उपस्थित रहे। प्राचार्य जी ने भाषण के माध्यम से छात्रों को वेदों के अनुसार दिनचर्या अपनाने के लिए कहा। भजन एवं भाषण में अच्छा प्रदर्शन हुसनजोत कौर, कशिश सोनिया सिंगला, प्रिया इत्यादि छात्रों ने किया। स्पण्ड और समाज सेवक श्री सतपाल जौहरी ने छात्रों को उपहार भेंट करके आशीर्वाद दिया। यज्ञ महिमा व शान्ति पाठ बोलकर समारोह की समाप्ति की।

दुर्गापुर में श्रावणी पर्व मनाया गया

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा पश्चिम बंगाल तथा आर्य युवा समाज द्वारा श्रावणी पर्व तथा वेद प्रचार सप्ताह मनाया गया। इसके अंतर्गत प्रत्येक दिन हवन, भजन व प्रवचन का आयोजन किया गया। बड़ी संख्या में अभिभावकों ने न केवल भाग लिया अपितु आर्य समाज की विचार धारा से प्रभावित होकर आर्य समाज की सदस्यता भी ग्रहण की।

समापन कार्यक्रम का आरंभ डी.ए.वी. दुर्गापुर में वृहद् यज्ञ से हुआ, जिसकी यजमान प्रधानाचार्या, सह क्षेत्रीय निदेशक एवं प्रधान, सुश्री पापिया मुखर्जी रहीं। इस अवसर पर पश्चिम बंगाल के प्रक्षेत्र की डी.ए.वी. संस्थाओं से आए हुए छात्रों ने पहले हवन में, इसके पश्चात् 'गीता श्लोकोच्चारण प्रतियोगिता' में भाग लिया। प्रथम स्थान दीक्षा दविवेदी डी.ए.वी. आसनसोल, द्वितीय स्थान देवोज्योति विश्वास, डी.ए.वी. दुर्गापुर और तृतीय स्थान अन्नेशा मिश्रा, डी.ए.वी. दुर्गापुर ने प्राप्त किया। तत्पश्चात् विशिष्ट स्थान प्राप्त करने वाले सभी प्रतिभागियों को पुरुस्कृत किया गया।

प्रधान, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि, उपसभा, सुश्री पापिया मुखर्जी ने महर्षि दयानन्द और योगीराज श्री कृष्ण के जीवन पर प्रकाश डालते हुए और वैदिक सिद्धांतों का हवाला देते हुए सभी को 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का संदेश दिया। उन्होंने अपने मधुर और हृदयग्राही उद्‌बोधन से सभी श्रोताओं को भाव–विभोर कर दिया। शांतिपाठ से कार्यक्रम का औपचारिक समापन हुआ।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**